दाशरथी-श्रीरामचन्द्र

अर्थात्

त्रेतावतार श्रीरामचन्द्र जी महाराज का

जीवनचरित ।

सम्पादक

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा ।

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में छपा.

सन् १९१६ ई०

भूमिका ।

जिन कामकाजी लोगों को अवकाशाभाव से समग्र वाल्मीकीय रामायण एवं अन्य रामचरित सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने का सुअवसर प्राप्त नहीं होता—उन लोगों के हितार्थ "दाशरथी-श्रीरामचन्द्र" नाम की पुस्तक लिखी गयी है। इस पुस्तक को तैयार करते समय अनेक पुस्तकों से काम लिया गया है और जहाँ आवश्यकता समझी गयी है, वहाँ पाद-टिप्पणी में मतान्तर अथवा प्रमाण उद्धृत कर दिये गये हैं। पाठकों के सुभीते के लिये रामायण के क्रम में भी कुछ हेर फेर किया गया है, जिससे पढ़ने वाले लोगों को वे बातें पहलेही अवगत हो जायँ जो उन्हें पीछे से विदित होती हैं। काण्डान्तर्गत अध्याय न रख कर क्रमागत अध्यायों पर संख्या रख दी गयी है।

संग्रहकर्त्ता ने विशद रामचरित को संक्षिप्त रूप से संगृहीत करने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न कहाँ तक सफल हो सका है—यह बतलाना पाठकों का काम है। इस भूमिका के अन्त में संग्रहकर्त्ता, श्रीयुत कृष्णलालदास की कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना अपना कर्त्तव्य समझता है, जिनकी रचना के आधार पर यह पुस्तक रची गयी है।

आशा है पाठकगण भूल चूक क्षमा करेंगे।

दारागंज—प्रयाग
ता० २२।८।१९१५

संग्रहकर्त्ता।

पहला अध्याय।

पुण्यसलिला सरयू नदी की तीरवर्तिनी अयोध्या

१—सरयू का आधुनिक नाम घाघरा है।

२—अयोध्या मथुरा * माया काशी काञ्ची † अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

अयोध्या के सम्बन्ध में किसी परिव्राजक ने लिखा है कि अयोध्या के पश्चिम और उत्तर में सरयू नदी बहती है। उत्तर पूर्व की ओर स्वर्ग-द्वार घाट से ले कर, उत्तर पश्चिम के कोण में गोप्रतारण घाट तक प्राचीन अयोध्या की सीमा है। इसका विस्तार उत्तर दक्षिण की ओर सरयू से तमसा नदी तक था। दक्षिण-पूर्व की ओर इष्टकपूर्ण सुग्रीव पर्वत, यूरोपियनों के मतानुसार २४०० वर्ष से अधिक प्राचीन है, इसके उत्तर हनुमानगढ़ी है और सरयू के तट पर श्रीरामचन्द्रजी के स्नान का घाट स्वर्ग-द्वार है। जिस स्थान पर प्रजा सहित श्रीरामचन्द्रजी ने वैकुण्ठ-यात्रा की वह घाट अब भी गोप्रतार (गुप्तार) घाट के नाम से प्रसिद्ध है। मनु के समय से ले कर महानन्द के समय तक अयोध्या सूर्यवंशियों के अधिकार में रही। बुद्धदेव ने कुछ दिनों तक यहाँ धर्म्मोपदेश दिया था। टूटे फूटे मन्दिरों से परिपूर्ण और जंगल से घिरी अयोध्या को, पीछे से पुराणानुसार

* हरिद्वार के समीपस्थ कनखल वा दक्षयज्ञस्थान। मतान्तरे कामरूपदेश।
† मतान्तरे पुरुषोत्तमक्षेत्र।

पुरी महाराज इक्ष्वाकु के समय से सूर्य्यवंशीय राजा लोगों की राजधानी रहती चली आयी है । प्राचीनकाल में अयोध्या की राजगद्दी पर प्रबल पराक्रान्त सर्वशास्त्रज्ञ अज नाम के एक राजा बैठ चुके हैं । धर्मपरायण एवं प्रजारक्षक महाराज अज के शासनकाल में आबाल वृद्ध सब लोग सन्तुष्ट थे और आनन्दपूर्वक समय बिताते थे । साथ ही अयोध्यानगरी भी महासमृद्धिशालिनी और लोचनानन्द-दायिनी बनी हुई थी ।

दशरथ को अन्धमुनि का शाप।

महाराज अज के सुशिक्षित, नीतिविशारद एवं अस्त्र-विद्या में निपुण दशरथ[1] नाम के एक पुत्र थे । महाराज

विक्रमादित्य ने माप कर ठीक किया । मुसलमानों के शासनकाल में अयोध्या नष्टप्राय हो गयी थी । फैजाबाद के मुसलमान मुर्दे अयोध्या में दफनाए जाते थे । अयोध्या को मुसलमानों ने करबला बना लिया था और कई मसजिदें बना लीं । सन् १८८५ई० में अयोध्या को हिन्दुओं ने बलपूर्वक मुसलमानों से छीना और जन्मस्थान तथा हनुमानगढ़ी पर अधिकार किया तबसे अयोध्या में हिन्दुओं का अधिकार है । सरयू के उस पार महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था । अयोध्या के समीप ही नन्दग्राम (the modern Nandgaon in Lucknow) है । अयोध्या का पूर्व प्रान्त साकेत नाम से प्रसिद्ध था ।

१-किसी किसी के मतानुसार स्वायम्भुव मनु ने नैमिषारण्य में तप कर विष्णु को तीन जन्म तक पुत्ररूप में प्राप्त करने का वर प्राप्त किया था । दशरथ="दशसु दिक्षु रथो यस्य सः"- whose chariot had access to the ten quarters of the globe, जिसका रथ दसों दिशाओं में जा सके उसका नाम दशरथ ।

अज ने इन्हींको युवराज के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था। राजकुमार दशरथ को शब्द-भेदि-बाण चलाने की विद्या भी सिखलायी गयी थी और वे शब्द या पैर की आहट सुन कर ही, मृगादि का शिकार कर सकते थे। इस आखेट के व्यसन में अनुरक्त युवराज दशरथ एक दिन जंगल में गये। वहाँ वे नदी तट पर बैठे हुए थे कि इतने में उनको ऐसा जान पड़ा कि मानों कोई हाथी नदी में जल पी रहा हो। किन्तु असल में वह था एक तापस-कुमार जो नदी में खड़ा अपने घड़े में जल भर रहा था। इसके पिता जाति के वैश्य और माता शूद्रा थी और दोनों ही अन्धे थे। यह बालक अपने अन्धे माता पिता के हाथ की लकड़ी था। युवराज दशरथ ने हाथी के भ्रम में पड़, शब्द-भेदी-बाण से इस तापस-कुमार को विद्ध किया। विद्ध होते ही बालक चिल्लाया और उसका चीत्कार सुन दशरथ उसके पास गये। उसे देख उनको अपनी भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ—किन्तु अब हो ही क्या सकता था। उस कुमार से उसके माता पिता का ठिकाना पूँछ युवराज उसके मृत शरीर को उसके पिता माता के पास ले गये और शोकान्वित हो सारा असली हाल उनको सुनाया। सुनते ही अन्ध दम्पति ने शोक में विह्वल हो युवराज को शाप दिया कि हमारी तरह तुमको भी पुत्रशोक के कारण शरीरत्याग करना पड़ेगा।

दशरथ के विवाह और राज्यप्राप्ति।

कुछ दिनों बाद दशरथ का विवाह परम रूपवती कौशल्या[1], कैकेयी[2] और सुमित्रा[3] के साथ हुआ और वे अयोध्या के राजसिंहासन[4] पर बैठे। इन तीन प्रधान महिषियों को छोड़ दशरथ के और भी अनेक रानियाँ थीं। उनमें से एक एकतमा[5] नाम की रानी थी, जिसके गर्भ से महाराज दशरथ के एक कन्या थी, जिसका नाम शान्ता था। इसको महाराज दशरथ ने मित्रताऽनुरोध से अङ्गदेश[6]

१—कोशलाधिपति की कन्या; कोशल—आधुनिक रुहेलखण्ड।

२—केकयराजनन्दिनी, केकय—वर्त्तमान पंजाब प्रदेश।

कैकेयी पूर्वजन्म में सुशीला नाम्नी कश्यप की स्त्री थी। इसको अपने पति से यह बात विदित हो गयी थी कि आगे चल कर अदिति के गर्भ से श्रीरामचन्द्र का अवतार होगा।

३—कोई कोई इनको मगध-राज-नन्दिनी बतलाता है।

मगधस्य नृपस्याथ तनया च शुचिस्मिता।
सुमित्रानाम नाम्ना च सुमित्रा तस्य भामिनी॥

किसी किसी के मतानुसार सुमित्रा सिंहलेश्वर की लड़की थी। जान पड़ता है मगध का सिंहल नामान्तर है या उसके अन्तर्गत कोई प्रान्त विशेष होगा। इस विषय में ठीक ठीक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

४—कहा जाता है कि प्रियतमा वनिता शापभ्रष्टा स्वर्ग-विद्याधरी इन्दुमती के स्वर्गगामिनी होने पर, अधीर हो राजा अज उसके साथ मरे और एक वर्ष की अवस्था का एक राजकुमार (दशरथ) को छोड़ गये। ये ही राजगद्दी पर बैठे और वशिष्ठ ने इन्हें पढ़ाया लिखाया।

५—किसी किसी ग्रन्थकार के मतानुसार भार्गव-राज-दुहिता। यह कौन से राजा भार्गव थे—यह निर्णय नहीं हो सकता।

६—आधुनिक भागलपुर और विहार का कुछ हिस्सा। भागीरथी और सरयू के संगमस्थान को अंगदेश निर्देश किया गया है। जिस स्थान पर महादेव जी ने मदन को जलाया था उसी स्थान का नाम अनंगाश्रम है।

के राजा रोमपाद को देदिया था और उन्होंने उसका निज कन्या की तरह लालन पालन किया था ।

शृङ्गीऋषि का वृत्तान्त ।

अङ्गदेश में एक बार जल न बरसने के कारण अकाल पड़ा । जल बरसाने के लिये एक यज्ञ करने का प्रबन्ध किया गया । इस यज्ञ में विभाण्डक ऋषि के पुत्र, शाप-भ्रष्टा-हरिणी के गर्भ से उत्पन्न, स्त्री-पुरुष-भेद-ज्ञान-रहित, महातेजा ऋष्यशृङ्ग के बुलाने की आवश्यकता पड़ी । तब महाराज रोमपाद ने उन्हें भुलावा दे कर ले आने के लिये वाराङ्गनाओं को भेजा । ये वाराङ्गनाएँ ऋष्यशृङ्ग को उनके पिता की आँख बचा कर निकाल लायीं । ऋष्यशृङ्ग के पिता कहीं क्रोध में भर शाप न दें—इस भय से राजा रोमपाद ने झट शान्ता के साथ ऋष्यशृङ्ग का विवाह कर दिया ।

कैकेयी का दशरथ द्वारा वर दिये जाने की प्रतिज्ञा ।

वीराग्रगण्य महाराज दशरथ के पूर्वपुरुषों में दण्ड नाम के एक राजा हो गये थे । यौवनावस्था में दण्ड बड़े उद्दण्ड तथा दुर्वृत्त थे । अतः पिता ने उनको देश-निकाला देदिया था । इस लिये वे दक्षिण प्रदेशान्तर्गत एक वन में रहा करते थे । इसीसे उस वन का नाम "दण्डकारण्य" अथवा "जनस्थान" पड़ गया था । इसी दण्डकारण्य में सम्बर नामक एक महाबली असुर रहा करता था । एक बार इन्द्र और सम्बर में लड़ाई छिड़ी । इन्द्र की ओर से युद्ध करने के लिये महाराज दशरथ भी गये और अपने साथ अपनी प्रिय रानी कैकेयी को भी लेते गये । इस देवासुरसंग्राम में महाराज

दशरथ घायल हुए । तब कैकेयी ने उनकी यथोचित सेवा-शुश्रूषा कर उन्हें आरोग्य कर लिया । कैकेयी की इस सेवा से प्रसन्न हो महाराज दशरथ ने उसे दो वर[1] देने चाहे । इस पर कैकेयी ने कहा—" इन दो वरों को आप अमानत में रखिये—मुझे जब आवश्यकता होगी मैं माँग लूँगी " ।

दूसरा अध्याय ।

दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ करना ।

इसके बाद अपुत्रक महाराज दशरथ ने सुमंत्र[2] प्रभृति मंत्रियों से परामर्श कर अपने जामाता को शान्ता सहित बुलाया और पुत्र की कामना से यज्ञ आरम्भ किया । यथाविधि विधान के साथ यज्ञ किया गया और यज्ञ-समाप्ति के समय सोने का पात्र हाथ में लिये एक महा-

---

१—मतान्तर में शम्बरासुर के युद्ध में क्षत विक्षत महाराज दशरथ ने कैकेयी की सेवा से आरोग्यता लाभ करने के समय एक वर और समयान्तर में फोड़े की पीड़ा से दशरथ के कातर होने पर, कैकेयी ने उनकी असाधारण परिचर्या कर के दूसरा वर पाया था । कहीं कहीं यह भी लिखा है कि देवासुरसंग्राम में देवताओं की ओर से लड़ते हुए दशरथ के रथ की धुरी से पहिये की कील निकल गयी । उस समय कैकेयी ने सावधानी से पहिया न निकलने दिया इस कार्य-पटुता पर प्रसन्न हो दशरथ ने उसे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी ।

२—सुमंत्र—अयोध्यापति के विश्वस्त प्रिय-कर्मचारी थे । वे रथ चलाने के काम में निपुण होने के कारण सारथी का काम किया करते थे । यह बड़े चतुर और राजघराने के परमहितैषी थे, अतः हरेक मामले में इनसे सलाह ली जाती थी ।

पुरुष अग्निकुण्ड से निकला। उसने उसमें जो पायस था वह रानियों को खिलाने के लिये महाराज को दिया। महाराज दशरथ ने उस पायस[1] का आधा भाग तो कौशल्या को दिया। आधा जो बच रहा उसका चतुर्थांश सुमित्रा को और अवशिष्ट कैकेयी को दिया। तीनों प्रधान रानियों ने उस पायस को प्रसन्नचित्त हो खाया। समय पा कर तीनों रानियाँ गर्भवती हुईं। इस हर्षप्रद समाचार को सुन अयोध्या की प्रजा हर्षित हुई।

दस महीने पूरे होते ही शुभ घड़ी में महारानी कौशल्या के एक, कैकेयी के एक और सुमित्रा के दो पुत्र उत्पन्न हुए। कुलगुरु वशिष्ठ[2] को साथ ले, महाराज दशरथ ने अतुल-रूप-राशि-सम्पन्न, एवं सर्व-सुलक्षण-युक्त चारों[3] पुत्रों को देख और प्रसन्न हो, ब्राह्मण और याचकों को धन रत्न दे सन्तुष्ट किया। नगरवासी, राजकर्मचारी-

---

१—मतान्तरे—उस पायस का अर्द्धांश कौशल्या को और अर्द्धांश कैकेयी को मिलने पर इन दोनों ने सौहार्द वश अपने अपने हिस्सों में से आधा आधा सुमित्रा को दिया था।

२—ये सप्तर्षियों में महाप्रभावशाली ब्रह्मर्षि हैं और ब्रह्मा की पीठ से उत्पन्न दस प्रजापतियों में से एक हैं। दस प्रजापतिः—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद।

३—श्रीरामचन्द्र तो स्वयं विष्णु भगवान्, लक्ष्मण, श्रीरामचन्द्र की सेवा के लिये अनन्तदेव (शेष जी) भरत और शत्रुघ्न—गदाधर भगवान् के शंख और चक्र के अवतार थे। कोई कोई भरत और शत्रुघ्न को भगवान् के दक्षिण और वाम बाहुओं के अवतार बतलाते हैं।

मंत्रिवर्ग-सभी आनन्द की लहरों में लहराने लगे। यथा समय, ज्येष्ठानुक्रम से कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न बालक का नाम श्रीरामचन्द्र, कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न बालक का नाम भरत, और सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न बालकों के नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखे गये।

राजकुमारों की शिक्षा आदि।

जैसे जैसे ये चारों राजकुमार बड़े होते जाते, वैसे वैसे ही इनको सब शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। ये चारों अपने पिता को इतने प्यारे थे कि वे इनको अपनी आँखों की ओट कभी नहीं करते थे। क्या बूढ़े, क्या बालक, सभी मुक्तकण्ठ से चारों बालकों की प्रशंसा किया करते थे। अन्य तीनों राजकुमारों की अपेक्षा श्रीरामचन्द्र ने परदुःखकातरता और विनय-नम्र-शीलता आदि सद्गुणों से सब लोगों को अपनी ओर अधिक आकृष्ट कर लिया था। लक्ष्मण[1], श्रीरामचन्द्र जी के साथ और शत्रुघ्न भरत जी के साथ रहा करते थे।

विश्वामित्र के साथ श्रीराम लक्ष्मण का जाना।

उन्हीं दिनों श्वेतकेतु नामक यक्ष की कन्या ताड़का[2],

१—लक्ष्मण श्रीराम के अनुगत थे—क्योंकि कौशल्या ने अपने हिस्से के पायस से सुमित्रा को पायस दिया था और शत्रुघ्न भी भरत के इसी लिये अनुगत थे कि कैकेयी ने अपने बाँट के पायस से निकाल कर शत्रुघ्न-माता को पायस दिया था।

२—ताड़का—अगस्त्य मुनि के शाप से विकृत रूप वाली हो गयी थी। शाप यह था:—

ततोऽतिसुन्दरी यक्षी सर्वाभरणभूषिता।
शापात् पिशाचत्वं प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादतः॥

अपने पुत्र मारीच और सुबाहु के साथ महर्षियों के तप में विघ्न डालने लगी। यह देख गाधिनन्दन[1] विश्वामित्र अयोध्या गये तथा अपने यज्ञ की रक्षा कराने को महाराज दशरथ से दस दिन के लिये श्रीराम को माँगा। यद्यपि बूढ़े तथा पुत्रवत्सल महाराज दशरथ, राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये श्रीराम को भेजना नहीं चाहते थे—तथापि विश्वामित्र के क्रोध के डर से और वशिष्ठ मुनि के परा-मर्श[2] से, विवश हो उन्हें श्रीराम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेजना पड़ा।

तीसरा अध्याय।

महर्षि विश्वामित्र दोनों बालकों को साथ ले अयोध्या से चले। रास्ते में उन्होंने दोनों को क्षुधा-तृष्णा-निवारक और सर्व-सिद्धि-कारी[3] एक महामंत्र बतलाया। फिर वे कई एक जनपद, तपोवन, और नदी पार कर, ताड़का-धर्षित

ताड़का-वध।

१—विश्वामित्र चन्द्रवंशीय कान्यकुब्जाधिपति कुशिक की स्त्री पौरकुत्सी के गर्भ से (इन्द्र के अंश से) महाराज गाधि के पुत्र। एक बार वशिष्ठ के तपोबल को देख वे मुग्ध हो गये और ब्रह्मर्षि होने की लालसा से अति कठोर तपस्या करने लगे। बहुविधि असाधारण विघ्नों को अतिक्रम कर, अन्त में वे ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त हुए।

२—वशिष्ठ का परामर्श (मतान्तर)

योगमाया तु सीतेति जाता जनकनन्दिनी।
विश्वामित्रोऽपि रामाय त्वां योजयितुमागतः॥

३—बला और अतिबला मंत्र।

तपोवन में पहुँचे । मुनिवर ने उस भयङ्करी राक्षसी का वृत्तान्त कह, उसका वध करने के लिये श्रीराम और लक्ष्मण को नियुक्त किया । मनुष्य की गन्ध पाते ही वह निशाचरी बड़े भयङ्कर वेग से उन दोनों पर लपकी, किन्तु श्रीराम ने एक ही पैने बाण से उसको भूमि पर गिरा दिया ।

श्रीरामचन्द्र को दिव्यास्त्रों की प्राप्ति ।

मर्मविद्ध राक्षसी विकट चीत्कार करती हुई मर गयी । देवताओं और उस तपोवन के आसपास रहने वाले मुनियों ने उस दुष्टा का वध करने के लिये श्रीराम जी को अनेक धन्यवाद दिये । साथ ही उन लोगों ने श्रीरामचन्द्र को शत्रु-निपातकारी अनेक दिव्यास्त्र देने के लिये विश्वामित्र से अनुरोध किया । तब, मुनिवर ने भी स्नेह और हर्षपूर्वक दोनों भाइयों को समंत्र समग्र दिव्यास्त्रों के प्रयोग बतलाये । वे मूर्तिमान् अस्त्र उनकी आज्ञा और वश्यता स्वीकार कर, उपयुक्त समय उपस्थित होने की प्रतिज्ञा कर अन्तर्हित हो गये ।

मारीच का दूर फेंका जाना ।

अनन्तर दोनों भाइयों को लिये, विश्वामित्र सिद्धाश्रम में पहुँचे और महर्षि ने दोनों राजकुमारों को अपने यज्ञ की रक्षा करने के लिये नियुक्त किया ।

१—विश्वामित्र का यज्ञस्थान—आधुनिक विहार में कोश ग्राम । जिला आरा के बिहिया ग्राम के पास का विस्तीर्ण मैदान—पहले ताड़का के रहने का स्थान था । मारीच जहाँ से दूर फेंका गया था—उस स्थान का नाम इस समय लोहदण्ड है ।

गगनस्पर्शी होमाग्नि का धूम देख दुर्वृत्त राक्षस मारीच और सुबाहु[1] अपने साथियों सहित रक्त और हड्डियों की वर्षा कर के यज्ञ में विघ्न डालने को दौड़े। उनको देख श्रीराम ने विना फर के एक बाण से मारीच को उस स्थान से बहुत दूर समुद्र तट पर फेंक दिया और सुबाहु को मार डाला। इन दोनों के साथियों में से अनेक तो वहीं मारे गये और बहुत से भाग गये। विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न पूरा हुआ। तब निर्विघ्न यज्ञ समाप्त होने के लिये उन्होंने दोनों भाइयों को साधुवाद दिये।

अहल्या का उद्धार और दोनों भाइयों का मिथिलापुरी को जाना।

इसी समय मिथिलाधिपति राजर्षि जनक ने एक महायज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया और मुनियों को निमंत्रित किया। इस आमंत्रण को स्वीकार कर तपोधन विश्वामित्र ने जनक के घर में रखा हुआ महादेव जी का विशाल धनुष श्रीराम जी को दिखाने के लिये, जनकपुरी जाने का संकल्प किया। सिद्धाश्रम से निकल तथा गंगा आदि नदियों को पार कर, विश्वामित्र दोनों राजकुमारों को लिये हुए मिथिला के समीप ऋषि गौतम के परित्यक्त जनशून्य आश्रम में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर विश्वामित्र ने गौतम का चरित्र दोनों भाइयों को सुनाया। साथ ही गौतम के शाप से अदृश्य रूप में पड़ी उनकी नारी अहल्या

१—हिरण्यकशिपु के पौत्र सुन्द के औरस और ताड़का के गर्भ से उत्पन्न।

को भी उन्हें दिखाया। अहल्या भी श्रीराम के दर्शन पा कर शाप से छूट गयी और उनकी स्तुति वन्दना कर, प्रसन्न होती हुई अपने स्वामी से मिलने के लिये गयी। विश्वामित्र भी दोनों राजकुमारों को लिये हुए मिथिलापुरी पहुँचे।

जनक की राजसभा में श्रीराम का पहुँचना।

महातपा विश्वामित्रादि मुनियों के दर्शन कर, राजर्षि जनक ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उनकी अभ्यर्थना की। फिर उन्होंने उनके साथ आये हुए सुलक्षणसम्पन्न दोनों बालकों का परिचय और आने का कारण पूँछा। उत्तर में विश्वामित्र ने कहा—ये दोनों अयोध्याधिपति महाराज दशरथ के पुत्र हैं, हमारा यज्ञ निर्विघ्न समाप्त कराने को ये दोनों हमारे आश्रम में गये थे। रास्ते में इन्होंने अहल्या का उद्धार किया है, और आपके यहाँ रखे हुए विशाल शिवधनुष को देखने के लिये आये हैं। जनकराज की सभा में बैठे हुए—उनके कुलगुरु और गौतम के पुत्र शतानन्द ने अपनी माता का शाप से छूटने का सुसंवाद सुन महर्षि विश्वामित्र की बहुत प्रशंसा की और श्रीरामचन्द्र को साधुवाद दिये।

शिवधनुष का वृत्तान्त।

अनन्तर महाराज जनक ने कहा कि जिस धनुष को देखने ये बालक आये हैं वह विश्वकर्मा का बनाया हुआ है। दक्ष का यज्ञविध्वंस करने तथा त्रिपुरासुर का वध करने के समय महादेव ने इससे काम लिया था। फिर महादेव जी ने मिथिलाधिपति पूज्य महात्मा देवरात

को यह धनुप दिया था। यह कह कर राजर्षि जनक ने यह भी कहा कि यज्ञभूमि में हल चलाने के समय पृथिवी से उनको सीता मिली है, जिसे उन्होंने अपनी निज कन्या की तरह पाला पोसा है। फिर उन्होंने यह भी कहा कि जो वीर उस शिव[1]धनुप पर रोदा चढ़ा देगा उसीको वह कन्यारत्न प्राप्त होगा। इन सब बातों को महाराज जनक ने विस्तारपूर्वक कहा। सीता के अनुपम रूपलावण्य पर मोहित हो बलदृप्त[2] अनेक राजा लोग उस शिवधनुप को उठाने के लिये वहाँ एकत्र हुए थे। किन्तु जब कोई भी उसे उठा तक न सका तब लज्जित और कुपित हो अन्त में वहाँ से वे सब भाग गये।

चौथा अध्याय।

महादेवजी के धनुप का तोड़ा जाना।

महादेव जी के धनुप का सारा हाल सुन महर्षि विश्वामित्र ने उस धनुप को मँगवाया। पाँच हजार बलवान् मजदूरों द्वारा वह धनुप सभामण्डप में लाया

१—हरधनुप—(मतान्तरे) ब्रह्मा के अनुरोध करने पर महादेव ने अपना धनुप परशुराम की मार्फत महाराज जनक के यहाँ रखवा दिया था। महेश्वर के निर्देशानुसार, भार्गव ने वह धनुप राजर्षि जनक को दिया और कह दिया कि उस धनुप पर जो रोदा चढ़ा सके उसीको अयोनिजा जानकी दी जाय।

२—जानकी जी को लेने के लिये लङ्केश्वर रावण भी मिथिला में गया था किन्तु जब वह उस धनुप को उठा भी न सका तब अपना सा मुँह ले कर वहाँ से भाग आया था।

गया । फिर विश्वामित्र तथा सभा में उपस्थित अन्य ऋषि मुनियों की आज्ञा को शिरोधार्य कर, अमित-तेजाः श्रीरामचन्द्र ने उस धनुष के पास जा, भीत और विस्मित सभास्थ लोगों के सामने उस धनुष को ऐसे उठा लिया जैसे कोई बालक गेंद को उठा ले । फिर अनायास श्रीराम ने उसे झुका कर उस पर रोदा चढ़ाया । रोदा चढ़ा कर उससे टङ्कार की। टङ्कार करते ही उसके दो टुकड़े हो गये । जिस धनुष को पाँच हज़ार हट्टे कट्टे मज़दूर उठा कर लाये थे और जिसे रावण जैसे बड़े बड़े बली राजा नहीं उठा सके थे, उसे श्रीराम ने बात की बात में तोड़ डाला—यह देख सभास्थ सब लोग केवल विस्मित ही न हुए, किन्तु प्रसन्न भी हुए । महर्षि विश्वामित्र, राजर्षि जनक और श्रीराम लक्ष्मण को छोड़ सभा में बैठे और लोग तो धनुष के टूटने का विकराल शब्द सुन मूर्च्छित हो गये ।

दशरथ का मिथिला में आगमन ।

अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार सीता जी का विवाह श्रीरामचन्द्र के साथ करने के लिये—विश्वामित्र की आज्ञानुसार—यह सुसंवाद देने को महाराज जनक ने अयोध्या को दूत भेजे । दूतों के मुख से इस हर्षसंवाद को सुन महाराज दशरथ अपने दोनों पुत्र—भरत शत्रुघ्न, मंत्रिवर्ग, पुरोहित तथा पुरवासियों को साथ ले और बारात सजा मिथिला नगरी में पहुँच गये ।

चारों पुत्रों का विवाह ।

तब जनक ने स्वयं दशरथ से मिल सारा वृत्तान्त

कहा और सीता तथा औरसजात अपनी कन्या उर्मिला का विवाह श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के साथ करने का अपना अभिप्राय प्रकट किया। इस शुभ प्रस्ताव को महाराज दशरथ ने स्वीकार किया। फिर वशिष्ठ तथा विश्वामित्र के परामर्शानुसार जनक के भाई कुशध्वज की रूप-गुण-सम्पन्ना माण्डवी और श्रुतिकीर्ति दो कन्याओं का विवाह यथाक्रम भरत और शत्रुघ्न के साथ करना निश्चित किया गया। इसके बाद कई दिनों के बाद आरम्भ किया हुआ यज्ञ समाप्त होने पर, जनक-राज ने चारों कन्याओं का चारों भाइयों के साथ विधि-पूर्वक विवाह कर दिया।

परशुराम संवाद।

विवाह हो चुकने पर विश्वामित्र तो हिमालय की ओर और महाराज दशरथ चारों राजकुमारों को तथा अपनी चारों बहुओं को साथ ले बरातियों सहित अयोध्या की ओर प्रस्थानित हुए। रास्ते में तपस्वी वेशधारी महा-तपाः **परशुराम**, शिवधनुप के तोड़े जाने का संवाद सुन,

---

१—परशुराम—भगवान् का छठवाँ अवतार (मतान्तरे) सोलहवाँ अवतार। यह जमदग्नि के पुत्र थे। यह भार्गवगोत्री थे। इन्होंने पिता की आज्ञा से माता को मार डाला था और पिता को मार डालने वाले कार्त्तवीर्यार्जुन को मार डाला था। क्रूरकर्मी क्षत्रियों पर कुपित हो २१ बार पृथिवी को इन्होंने निःक्षत्रिया किया और उनके रक्त से समन्त नामक पाँच बड़े बड़े तालाब भरे और उनके जल से भृगुवंश के पूर्वपुरुषों का तर्पण किया। अन्त में कश्यप को सारी पृथिवी दान कर,

क्रोध में भर, और रास्ता रोक श्रीरामचन्द्र जी के सामने जा खड़े हुए । फिर परशुराम ने शिव के धनुष की अपेक्षा, विष्णु से पुरुष-परम्परा-क्रम से प्राप्त अपने हाथ के वैष्णवधनुष का प्राधान्य प्रतिपन्न कर श्रीरामचन्द्र के साथ द्वन्द्वयुद्ध करने के उद्देश्य से उस पर रोदा चढ़ा कर बाण रखने को उनसे कहा । श्रीरामचन्द्र ने तुरन्त परशुराम के हाथ से विष्णुधनुष ले लिया और उसपर रोदा चढ़ा कर बाण रखा । अनन्तर परशुराम से पूँछा कि यह बाण अब किधर छोड़ा जाय । अन्त में परशुराम

स्वयं महेन्द्र पर्वत पर जा रहे । इनकी गणना अमरों में है। अमर सात हैं—यथा अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृप और परशुराम ।

चन्द्रवंशीय गाधिराज की कन्या सत्यवती के गर्भ से भार्गव ऋचीक-पुत्र जमदग्नि के औरस और इक्ष्वाकुवंशीय रेणुका के गर्भ से परशुराम का जन्म हुआ था ।

ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न

भृगु

च्यवन — और्व — ऋचीक — जमदग्नि — परशुराम

शुक्राचार्य (दैत्यगुरु—इनको भी कोई कोई भृगु बतलाते हैं)।

१—पुराकाल में विष्णु, ब्रह्मा और शिव में परस्पर इस बात को लेकर विवाद उठा कि उनमें सबसे अधिक बलवान् कौन है । इसके निर्णय में विष्णु का धनुष ही शिव के धनुष की अपेक्षा प्रधान सिद्ध हुआ ।

२—(मतान्तरे) राम के द्वारा चलाये गये बाण से परशुराम की प्रार्थनानुसार उनका स्वर्गमार्ग बन्द कर दिया गया । (और भी) निक्षिप्त बाण से विह्वल और हततेज परशुराम, सचेत होने पर महेन्द्राचल को चले गये और वहाँ वधूसर नदी के तट पर दीप्तोद तीर्थ में स्नान कर, पूर्व तेज को पुनः प्राप्त हुए ।
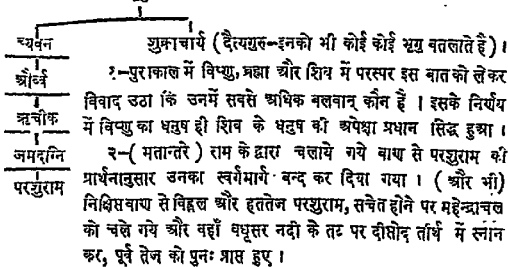
द्वारा बहुत कुछ अनुनय विनय किये जाने पर उस बाण से परशुराम जी का तपस्यार्जित फल नष्ट किया गया ।

पुत्रों के साथ दशरथ का अयोध्या-प्रवेश ।

इस प्रकार पराभूत होने और श्रीरामचन्द्र जी को नारायण समझ तथा उनको प्रणाम कर, परशुराम के तपस्या करने को महेन्द्राचल पर चले जाने पर, विपद्-मुक्त महाराज दशरथ शीघ्र शीघ्र चल बारात सहित अयोध्या पहुँचे । इसके पहले भरत के मामा युवराज युधाजित अपने भाँजे को देखने अयोध्या आये थे, किन्तु मिथिला में विवाह की तैयारियाँ सुन—स्वयं भी बारात में सम्मिलित हुए थे । अब अयोध्या लौट और भरत एवं शत्रुघ्न को अपने साथ ले वे अपनी राजधानी को लौट गये । महाराज दशरथ, राम और लक्ष्मण सहित, आनन्द-पूर्वक राज्यशासन करने लगे ।

पाँचवाँ अध्याय ।

रामचन्द्र के राज्याभिषेक का दशरथ द्वारा संकल्प।

इस समय श्रीरामचन्द्र की अवस्था पचीस वर्ष की है और यह ज्येष्ठ राजकुमार हैं । रघुवंश की प्रथानुसार राज-

---

१—पण्डित लोग राम को भगवान् का अंशावतार और परशुराम को क्षत्रियों के निधनार्थ आवेशावतार बतलाते हैं । इस आसुरिक कार्य के समाप्त होने पर, भगवान् श्रीरामचन्द्र ने परशुराम की शेष शक्ति को खींच लिया । कहना न होगा कि श्रीरामचन्द्र की यह शक्ति आजन्म ऐसी ही बनी रही ।

सिंहासन के यही अधिकारी हैं । अतः महाराज दशरथ ने इनको अयोध्या के राज्य पर अभिषिक्त करने का विचार किया । उनके इस विचार का अनुमोदन उनके गुरु, मंत्रियों तथा पुरवासियों ने भी किया । कई दिनों तक बराबर बुरे बुरे स्वप्न देख और दुष्परिणाम की आशंका कर, वृद्ध महाराज दशरथ ने अगले दिन ही पुष्य नक्षत्र में श्रीराम जी के अभिषेक किये जाने की घर बाहर सर्वत्र घोषणा करा दी और यथाविधि श्रीराम जी को सस्त्रीक उस दिन उपवास करने की आज्ञा दी । समय की कमी के कारण यह शुभ संवाद केकयाधिपति और महाराज जनक के पास न भेजा जा सका ।

रामचन्द्र जी के राजा होने की आशा में सबका प्रसन्न होना ।

पुरवासी और अयोध्या के राज्य में बसने वाले लोग श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक का संवाद पा कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने वित्तानुसार इस उत्सव में योग देने लगे । रामजननी कौशल्या देवी अन्य रानियों और पुरवासिनी स्त्रियों से घिर कर, प्रसन्नचित्त हो पुत्र के मङ्गल के लिये यथाविधि देवाराधन करने लगीं । महाराज दशरथ, गुरु और पुरोहित के साथ यथाशास्त्र इस माङ्गलिक कार्य में लगे और अन्य लोगों को अलग अलग काम सौंपे । प्रियदर्शन राम, पिता की आज्ञानुसार-प्रसन्नवदना जानकी के साथ, उपवास व्रत धारण कर, विविध शास्त्रों की चर्चा करते हुए समय व्यतीत करने लगे ।

मन्थरा का परामर्श ।

धीरे धीरे रात हुई । कैकेयी के मायके से उसके साथ **मंथरा** नाम की एक दासी आयी थी । वह शरीर की जैसी कूबरी थी वैसी ही उसकी मति भी विकृत थी। वही दासी सरलहृदया, आनन्द में डूबी, मंगलाचार करने में लगी हुई, अपनी मालकिन कैकेयी के पास एकान्त में गयी और कहने लगी—श्रीरामचन्द्र के गद्दी पर बैठने पर, भरत को सदा के लिये उनका आज्ञानुवर्त्ती बनना पड़ेगा. और अन्य रानियों को राजमाता कौशल्या की सेवा कर के उनकी आज्ञा में रहना पड़ेगा । इसी प्रकार उस दुष्टा ने अनेक मनमानी **अनर्थकारी** बातें गढ़, राम जी के विरुद्ध *केकयराज-दुहिता, अभिमानिनी कैकेयी को उभाड़ दिया ।*

कैकेयी का दुष्टअभिप्राय।

इस प्रकार के अनर्थ वाक्यों से डरी हुई और हतबुद्धि कैकेयी ने अपनी कूबरी दासी को सचमुच अपनी हितै-

---

१—सीता सहित रामचन्द्र को वन में भेजने के लिये उत्सुक मन्थरा, ब्रह्मा के आदेशानुसार दुन्दुभी नाम्नी गन्धर्वी, मन्थरा के रूप में कैकेयी की सेवा में नियुक्त हुई थी।

२—किसी ग्रन्थानुसार, देवताओं के अनुरोध से वाग्देवी सरस्वती पहले मन्थरा और पीछे कैकेयी के कण्ठ में जा बैठी थीं और रामचन्द्र जी को वन में भिजवाने का मन्थरा को मूल कारण ठहराया था।

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन् ।
गच्छ देवि ! भुवोलोकमयोध्यायां प्रयत्नतः ॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः ।
मन्थरां प्रति संवादौ कैकेयीञ्च ततः परम् ॥

पिणी समझ और विकल हो आयी हुई विपत्ति से निस्तार पाने का उसीसे उपाय पूँछा । तब उस क्रूरबुद्धि वाली मंथरा ने उन दो वरों की उसे याद दिलायी, जो सम्बरासुर के संग्राम में महाराज दशरथ ने उसको उसकी सेवा शुश्रूषा से प्रसन्न हो देने कहे थे । फिर एक वर से तो भरत के लिये अयोध्या की राजगद्दी मँगवायी और दूसरे वर से राम जी को तपस्वी वेप से चौदह वर्ष के लिये वनवास । मंथरा के बतलाये ये उपाय कैकेयी के गले उतर गये और उसने मंथरा की बुद्धि की केवल प्रशंसा ही न की, किन्तु उसे इस सत्परामर्श के लिये पुरस्कार भी दिया । तदनन्तर उसने अपने शरीर के सारे आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र उतार कर फेंक दिये और क्रुद्ध वाघिन जैसा रूप बना और क्रोधागार में जा पृथिवी पर लेट गयी ।

दशरथ का कैकेयी के घर आना ।

रात होने पर और अपना काम पूरा कर वृद्ध महाराज दशरथ, अपनी नित्य रीति के अनुसार प्रिय महिषी कैकेयी के महल में पहुँचे । किन्तु द्वार पर पहुँचते ही उन्होंने द्वारपालों से सुना कि कैकेयी रूठ कर क्रोधागार में पड़ी है । यह दुस्संवाद सुनते ही दशरथ का माथा ठनका और वे डरत डरते क्रोधागार में पहुँचे । वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि कैकेयी अमंगलवेप धारण कर पृथिवी पर लोट रही है । यह देख और व्यग्र हो महाराज ने उससे इस अमंगल का कारण पूँछा और कठिन भूमिशय्या छोड़ कर

पलंग पर लेटने का वारंवार अनुरोध किया । किन्तु इन सबके उत्तर में अभिमानिनी कैकेयी ने रोना आरम्भ किया ।

पूर्व प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये कैकेयी का अनुरोध ।

बहुत कहा सुनी के वाद सत्य के अनुरोध से दशरथ ने कैकेयी को मुँहमाँगी वस्तु देने की प्रतिज्ञा की । तब उसने सम्बरासुर के युद्ध में महाराज ने उसे जो दो वर देने कहे थे उनकी उन्हें याद दिलायी । फिर कहा कि अब उन दो वरों के देने का समय है और मैं एक वर से तो भरत के लिये अयोध्या का राजसिंहासन माँगती हूँ और दूसरे से तपस्वी के वेप में चौदह वर्ष के लिये रामचन्द्र के लिये वनवास । साथ ही उसने यह भी कहा कि इन दो वस्तुओं को छोड़ न तो और कोई वस्तु मुझे चाहिये और न इनको छोड़ और किसीसे मैं प्रसन्न ही हो सकती हूँ ।

भीत दशरथ विपत्ति में ।

वज्र से भी वढ़ कर कैकेयी के इन दारुण वचनों को सुन वृद्ध राजा मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े । तब कैकेयी उनको सचेत करने के लिये उपचार करने लगी । कुछ ही क्षणों के उपचार से दशरथ सचेत हो गये और स्वप्न देख कर जागे हुए की तरह कैकेयी से फिर पूँछने लगे । पर उसने फिर भी वे ही बातें कहीं और महाराज को उन दोनों वरों को देने के लिये विवश किया ।

दशरथ का विलाप ।

महाराज दशरथ ने कैकेयी को सीधे रास्ते पर लाने के लिये, नय, विनय, रोप आदि सभी दिखलाये—पर उस दुष्टा के ऊपर उनका एक भी उपाय न चला । अन्त

में राजा दशरथ अपने दुर्भाग्य को बारंबार धिक्कारने लगे और रोष, शोक एवं क्रोध में डूब चुप हो गये। संसार की असारता, मनुष्यों की भवितव्यता, ग्रहों की प्रतिकूलता और सबके ऊपर स्त्री के हाथ में रहने वाले की दुर्गति को सोचते सोचते—कभी तो महाराज दशरथ लड़कों की तरह रोने लगते और कभी पागलों की तरह बकने लगते थे। उनकी इस दशा को देख, दुःखी होने के बदले, मंथरा के बतलाये उपाय से अपने अभीष्ट की सिद्धि होते देख, कैकेयी मनही मन अत्यन्त प्रसन्न होती थी।

छठवाँ अध्याय।

दशरथ के पास सुमन्त का जाना।

वह दुःखदायिनी रात किसी तरह कटी और सवेरा हुआ। महर्षि वशिष्ठ आदि पुरोहित, अभिषेकोपयोगी द्रव्यों को एकत्र कर, दशरथ के रनवास से बाहिर निकलने की प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु जब उन्होंने देखा कि अभिषेक का मुहूर्त्त निकला जाता है तब उन्होंने वृद्ध सारथी सुमन्त को महाराज के पास उन्हें बुलाने के लिये भेजा। सुमन्त अनेक ड्योढ़ियाँ और आँगने नाँघते कैकेयी क कोपभवन में पहुँचे और वहाँ महाराज की शोच्य दशा देख उनका मन खिन्न हो गया। महाराज आँखों में आँसू भर उनकी ओर देखने लगे। तब कैकेयी ने श्रीरामचन्द्र को वहीं बुला लाने की सुमन्त को आज्ञा दी। पर जब सुमन्त महाराज की आज्ञा की

प्रतीक्षा में खड़े रहे, तब महाराज ने कैकेयी की आज्ञा का अनुमोदन किया।

रानी राजा की आज्ञा सुन सारथीप्रवर सुमन्त शीघ्र वहाँसे चल दिये और श्रीरामचन्द्र जी के समीप पहुँच महाराज का अभिप्राय उनको जनाया। सुनते ही कमल-लोचन राम ने अपनी भार्या जानकी से विदा माँगी और पिता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से वे अपनी सौतेली माता क घर की ओर प्रस्थानित हुए। श्रीरामचन्द्र के वहाँ पहुँचने पर वृद्ध महीपाल दशरथ अत्यन्त शोकाकुल हुए और केवल "राम" शब्द उच्चारण कर चुप हो गये। पर कैकेयी तो चुप होने वाली न थी। उसने अपने माँगे वरों का तथा दशरथ की प्रतिज्ञा का सारा हाल तुरन्त कह दिया और कहा कि पिता की बात रखना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

रामचन्द्र को पिता का बात रखने का आदेश।

राजसिंहासन के बदले वनवास मिलने की बात सुन श्रीरामचन्द्र जी ने अविचल चित्त से सौतेली माता की आज्ञा को मानना स्वीकार किया और वे अपने शोकार्त्त पिता को अनेक प्रकार से समझा बुझा कर स्वस्थ करने लगे। इस बीच में श्रीरामचन्द्र के पास खड़े वृद्ध सुमन्त ने उस प्रकाण्ड व्यापार का आदि अन्त समझ लिया। तब उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा पालन के लिये दशरथ को फट-कारा, इस निष्ठुर प्रार्थना के लिये कैकेयी को लाञ्छित किया और अन्त में ऐसे अश्रुत-पूर्व पितृसत्यपालन के

दशरथ की प्रतिज्ञा के बारे में और सब लोगों का मतामत।

लिये यत्नशील रामचन्द्र की बालकों जैसी बुद्धि बतला उनको तिरस्कृत किया। मारे आनन्द के फूली कौशल्या देवी इस अशुभ संवाद को सुनते ही मूर्च्छित हो गयी किन्तु श्रीरामचन्द्र द्वारा उपचार किये जाने पर वह सचेत हुई। उधर लक्ष्मण ने जब सारा वृत्तान्त सुना तब वे सौतेली माता की क्रूरता, पिता की असावधानी और अपने बड़े भाई की सत्यशीलता की पराकाष्ठा देख। बहुत बिगड़े और कहा हम अपने बाहुबल से अपने बड़े भाई को अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठायेंगे—देखें कौन हमें रोकता है।

रामचन्द्र की वन जाने की तैयारियाँ।

वशिष्ठ प्रभृति ब्राह्मण, कौशल्या आदि, पुरवासी गण, सुमन्त्र आदि मंत्रिवर्ग, और अन्य राजपुरुष तथा आबालवृद्ध नागरिक, सारे अनर्थों की जड़ कैकेयी का तिरस्कार कर, और एकमत हो, दशरथ की प्रतिज्ञा की अवहेला कर, श्रीरामचन्द्र का अभिषेक किये जाने का अनुरोध करने लगे। किन्तु बुद्धिमान् रामचन्द्र जी ने विनयपूर्वक कोमल शब्दों में और शास्त्रसंयुक्त प्रोज्ज्वल दृष्टान्तों द्वारा उन सबको समझाया बुझाया और तुरन्त वन जाने का विचार पक्का कर वे सीता जी के पास उनसे विदा होने के लिये गये। श्रीरामचन्द्र जी वन जाते हैं—यह सुन, और स्वयं रामचन्द्रजी तथा अन्य लोगों द्वारा अनेक प्रकार से समझायी जाने पर भी सीता जी ने शरीर की छाया की तरह रामचन्द्र जी के पीछे पीछे जाने का

दृढ़ संकल्प किया । बड़े भाई को पिता की बात रखने में उद्यत देख, महामति लक्ष्मण भी प्रसन्नतापूर्वक उनके पीछे जाने को तैयार हो गये ।

भाई और स्त्री सहित रामचन्द्रजी का वन को जाना।

कौशल्या आदि माताओं को, मर्माहत वृद्ध पिता की सेवा शुश्रूषा में लगा कर, राम और लक्ष्मण केवल वल्कल वस्त्र पहन, और अस्त्रादि ले, सुमंत्र के लाये रथ में सीता सहित बैठ, वन की ओर चल दिये । लोगों के बहुत कहने सुनने से सीता ने शरीर के गहने नहीं उतारे। उनके वन की ओर जाते ही नगर और पुर में रोना पीटना मच गया । अन्त में यथाशक्ति सबको समझा और ढाँढस बँधा । श्रीरामचन्द्र ने सुमंत्र को रथ हाँकने की आज्ञा दी । तिस पर भी असंख्य पुरवासी और नागरिक रोते हुए उनके रथ के पीछे हो लिये । राम को लिये हुए रथ निगाह से छिप गया । दशरथ प्रमुख पौरजन धूल में लोट कर शोक प्रकाशित करने लगे। आनन्दमयी अयोध्या पुरी को श्मशानभूमि की तरह पीठ दिखा, रथ दक्षिण की ओर चला गया ।

सातवाँ अध्याय ।

रामजी का निषाद राज्य में प्रवेश और उनका गङ्गा पार होना।

श्रीरामचन्द्र जी ने वनवास की प्रथम रात तो **तमसा**

१—तमसा नदी का प्रचलित नाम टौंस है। यह आजमगढ़ के पास बहती हुई बलिया जिले में गंगा में जा गिरी है ।

तमसा नाम की एक दूसरी और नदी है जो बुन्देलखण्ड में बहती हुई प्रयाग के पास गंगा में आ मिलती है इन्हीं दोनों नदियों के संगम पर वाल्मीकि का वन बतलाया जाता है ।

नदी के तट पर बितायी । दूसरे दिन वेदश्रुती और गोमती नाम्नी दो नदियों तथा कोशल राज्य की सीमा को पार कर वे गुह की राजधानी के समीप पहुँचे। निषादपति ने मैत्रीवश रामचन्द्र को अपने घर ले जाना चाहा, किन्तु वनवास का व्रत धारण करने वाले के लिये बस्ती में जाना अनुचित बतला-रामचन्द्र ने अपने मित्र के प्रस्ताव को अग्राह्य समझा । पास ही इङ्गुदी[1] का एक पेड़ था। उसीके नीचे पत्तों को बिछा राम जी ने दूसरी रात बितायी। दूसरे दिन नेत्रों में आँसू भर श्रीरामचन्द्र जी ने रथ सहित सुमंत्र को विदा किया । उनके साथ केवल लक्ष्मण सीता और गुह रह गये । तदनन्तर तीनों नाव में बैठ गङ्गा के उस पार पहुँचे ।

भरद्वाजाश्रम। भागीरथी के पार हो, रामचन्द्र जी पैदल चल कर लक्ष्मण और सीता सहित प्रयाग में गङ्गा यमुना के संगम[2] पर भरद्वाजाश्रम में पहुँचे। उनके आगमन से भरद्वाज बहुत प्रसन्न हुए और यथाविधि उनकी अभ्यर्थना की। फिर उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी से अनुरोध किया कि उन्हींके आश्रम में रह कर वे चौदह वर्ष बितायें । किन्तु उनका आश्रम अयोध्या के अतिनिकट होने के कारण श्रीराम जी ने वहाँ

१-पूर्वकाल में ऋषि इसी वृक्ष का तेल काम में लाते थे ।

२-प्रयाग अथवा प्रतिष्ठान, पहले राजा पुरूरवा की राजधानी थी। द्वापर युग में इसका नाम वारणावत पड़ा ।

रहना अनुचित समझा और मुनिवर से किसी सुदूरवर्त्ती सुरम्य स्थान का पता पूँछा। तब विवश हो मुनिवर ने वहाँसे दस योजन की दूरी पर अवस्थित और तपोधन वाल्मीकि के तपोवन के निकट मनोहर चित्रकूट पर्वत का पता बतलाया। महाभाग रामचन्द्र ने उस स्थान को पसन्द किया और एक रात भरद्वाज के आश्रम में रह दूसरे दिन वे चित्रकूट पर्वत की ओर प्रस्थानित हुए।

चित्रकूट पर्वत।

रास्ते में यमुना आदि नदियों को पार कर, दक्षिण की ओर चलते हुए, रामचन्द्र चित्रकूट के समीप पहुँचे। वहाँ की शोभा देख रामचन्द्र जी अतिप्रसन्न हुए। फिर वे मुनिगण सेवित महर्षि वाल्मीकि के तपोवन में गये। वहाँ जा महर्षि के दर्शन कर, और उनकी अपने ऊपर प्रीति देख वे बहुत प्रसन्न हुए। महर्षि वाल्मीकि ने उनसे अनुरोध किया कि आप यहीं तपस्वियों के रहने योग्य कुटी बना कर सुखपूर्वक दिन व्यतीत कीजिये। रामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण ने तुरन्त वहाँ एक पर्णकुटी बना कर तैयार कर डाली। लक्ष्मण और सीता सहित रामचन्द्र जी वहाँ यथाविहित यागादि कर के परम सुखपूर्वक दिन विताने लगे। लक्ष्मण रात भर तो अस्त्र शस्त्र ले उस कुटी के द्वार पर बैठ पहरा देते थे और दिन उगने पर वन में जा फूल फल ले आया करते थे। लक्ष्मण ने अपने भाई भौजाई की आज्ञा का पालन करना ही अपना परम धर्म अथवा कर्त्तव्य समझ लिया था।

आठवाँ अध्याय।

रीता रथ लेकर सुमंत्र का अयोध्या पहुँचना।

रामचन्द्र जब गङ्गा के उस पार पहुँच गये, तब शोक-विह्वल सुमंत्र रीता रथ लिये हुए अयोध्या में पहुँचे। वहाँ पहुँच उन्होंने पुत्र के वियोग में शय्यागत महाराज दशरथ और शोकविह्वला महारानी कौशल्या तथा सुमित्रा एवं अन्यान्य दु:खी पुरवासियों के सामने सीता और लक्ष्मण सहित राम जी का गंगा पार हो पैदल वन की ओर जाने का वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुन सब लोगों ने एक-वाक्य हो श्रीरामचन्द्र की महानुभावता, लक्ष्मण का भ्रातृ-सौहार्द और सीता जी के पातिव्रत्य की बहुत प्रशंसा की और साथ ही वे दु:खी भी हुए।

दशरथ का परलोक-वास।

सुमंत्र के अकेले लौटने का संवाद सुन वृद्ध महाराज दशरथ की दशा बहुत बिगड़ गयी। वे अधीर हो थोड़ी थोड़ी देर बाद ही मूर्च्छित होने लगे। उनकी इस शोच्य दशा को देख महारानी कौशल्या प्राणपण से उनकी सेवा शुश्रूषा करने लगीं। जिस दिन श्रीरामचन्द्र जी वन को गये उसके छठवें दिन, अन्ध तापस दम्पति का शाप सहसा उन्हें स्मरण हो आया और उसका सारा वृत्तान्त उन्होंने कौशल्या देवी से कहा। फिर आधी रात होते ही समस्त अयोध्यापुरी को शोकसागर में डुबो महाराज दशरथ ने दारुण पुत्रशोक के कष्ट से शरीर त्याग दिया।

दशरथ के शरीर त्याग देने पर मार्कण्डेय[1], गौतम, वशिष्ट प्रभृति मुनियों और मंत्रियों ने परलोकगत महाराज की रानियों को समझा बुझा कर शान्त किया और उनके किसी भी पुत्र के राजधानी में उपस्थित न होने से उनके और्ध्वदेहिक कृत्य को दूसरे से कराना ठीक न समझ, उनके मृत शरीर को तेल में डुबो कर रखवा दिया, जिससे वह बिगड़ने न पावे। तदुपरान्त तेज़ चलने वाले दूत केकयराज अश्वपति के पास, भरत और शत्रुघ्न को लाने के लिये भेजे गये। अयोध्या से चल कर दूसरे दिन सवेरे वे दूत गिरिव्रज[2] नगरस्थ केकयराजपुर में उपस्थित हुए। वशिष्ट आदि ने उन दूतों को समझा दिया था कि अयोध्या में जो दुर्घटनाएँ हुई हैं—उनका हाल वे भरत से न कहें। अतः पिछली रात को दुःस्वप्न देखने के कारण उद्विग्नमन भरत से उन दूतों ने शीघ्र अयोध्या चलने के लिये ही केवल प्रार्थना की। उस पर केकयाधिपति ने भी

ननिहाल से भरत को बुलाने का परामर्श।

१—यह अति क्षीणायु होने पर भी सप्तर्षियों के आशीर्वाद से दीर्घजीवी हो गये थे। दीर्घजीवी हो और अपने पिता मृकण्डु की सम्मति से ब्रह्मा की उपासना करने पुष्कर गये। किसी किसी का मत है कि रामचन्द्र जी के साथ इनका परिचय यहीं हुआ था।

२—लोग बुद्धों के राजगृह ही को गिरिव्रज कहते हैं। यह पहाड़ों से घिरा हुआ होने के कारण गिरिव्रज कहलाता है। इन पहाड़ों के नाम वैभारगिरि, विपुलगिरि, रत्नगिरि, शोणगिरि, उदयगिरि। महाभारत में इसे जरासन्ध की राजधानी बतलाया है। जान पड़ता है गिरिव्रज दो हैं। एक पंजाब में दूसरा मगध में।

किसी प्रकार की आपत्ति या सन्देह किये बिना ही दोनों दौहित्रों को शीघ्र अयोध्या जाने की अनुमति दे दी।

भरत का अयोध्या में आगमन।

ननिहाल से दूतों के साथ चल रहस्यानभिज्ञ दोनों भाई आठवें[1] दिन अयोध्या पहुँचे अयोध्यापुरी को श्रीहीन देख मन ही मन सन्देह करते—भरत अपनी माता के घर में घुसे। भरत ने माता के मुखसे क्रमशः पिता की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये तथा राजपद की उपेक्षा कर, और तपस्वियों का वेष बना, सीता लक्ष्मण सहित चौदह वर्ष के लिये, राम जी का वनगमन, महाराज की आज्ञा से अपने राज्याभिषेक की व्यवस्था तथा रामविरह में महाराज के परलोकवास का वृत्तान्त सुना। फिर पुत्र को देख प्रसन्न कैकेयी ने अपने सौत के लड़के रामचन्द्र जी की अनुपस्थिति में, भरत को राजगद्दी पर बैठने की आज्ञा दी।

रामचन्द्र जी की खोज में भरत का जाना।

माता की दुरभिसन्धि से पिता की मृत्यु, बड़े भाई का वनवास, आदि शोच्य घटनाओं को सुन, धर्मपरायण भरत ने, माता कैकेयी को बहुत कुछ भला बुरा कहा। फिर इस कुमंत्रणा की सूत्रधार मन्थरा की खबर ली। तदनन्तर उन्होंने राममाता कौशल्या को समझा कर शान्त किया और यथाविधि पिता का और्ध्वदेहिक कृत्य पूरा

१—भरत को लिवाने जो दूत गये थे वे पगडण्डी के मार्ग से जा बहुत जल्द अश्वपति की राजधानी में पहुंचे थे किन्तु रथ का मार्ग चक्करदार था, अतः भरत को अयोध्या पहुँचने में आठ दिन लगे थे।

किया। इन कामों से निश्चिन्त हो और मंत्रिवर्ग तथा वशिष्ठ प्रमुख ऋषियों के परामर्शानुसार ससैन्य और अनेक जनों को साथ ले–माताओं को आगे कर, भरत जी सीता लक्ष्मण सहित बड़े भाई रामचन्द्र को लौटा लाने के लिये तपस्वी का वेष बना अयोध्या से प्रस्थानित हुए।

भरत की प्रयाग में उपस्थिति।

धीरे धीरे भरत बहुतसे नागरिक और सैनिकों सहित गंगा के तट पर पहुँचे। वहाँ श्रीरामचन्द्र के मित्र निषादराज को जब यह बात विदित हुई कि महात्मा भरत अपने बड़े भाई रामचन्द्रजी को लौटा लाने को जा रहे हैं, तब वह उनका आतिथ्य करने के अभिप्राय से उनसे मिला। वन जाते समय गुहराज के साथ रामचन्द्र से जो बातचीत हुई थी और जिस प्रकार उन्होंने इङ्गुदी के वृक्ष तले, सो कर वह रात व्यतीत की थी–इन्हीं सब बातों को सुनते सुनते भरत ने वह सारी रात बैठे बैठे ही व्यतीत कर डाली। सवेरा होते ही निषादपति की सहायता से भरत ससैन्य और अन्य साथियों के साथ नावों में बैठ गंगा पार हुए। फिर वहाँ से चल प्रयाग में भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे।

भरत की चित्रकूट-यात्रा

आश्रम के समीप सेना आदि को छोड़ भरत महर्षि भरद्वाज के पास गये। महर्षि को यथाविधि अभिवादन कर भरत ने अपने आने का कारण बतलाया। जिसे सुन भरद्वाज बहुत प्रसन्न हुए और उस दिन उन्हें अपने आश्रम ही में रखा। महर्षिने तपोबल से क्षण भर में उसी स्थान पर

सुरम्य हर्म्यश्रेणी और अनेक प्रकार की भोजनसामग्री प्रस्तुत कर दी । उनके द्वारा भरत के साथी परम सन्तुष्ट हुए । दूसरे दिन महर्षि ने भरत जी को अनेक प्रकार के उपदेश दिये और यह कह कर उन्हें धीरज बँधाया कि रानी कैकेयी की इस कुबुद्धि का आगे चल कर बड़ा मंगलप्रद परिणाम होगा । तदनन्तर भरत को चित्रकूट का मार्ग[१] बतला उनके साथियों सहित उनको बिदा किया ।

चित्रकूट में भरतका राम को ढूंढ़ना ।

दक्षिण की ओर चलते हुए भरत जी मनोहर दृश्यों से युक्त चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे । वे जानते थे कि उस पर्वत पर अनेक तपोधन ऋषियों की कुटियाँ हैं । उनके साथ की भीड़भाड़ से उन ऋषियों के तप ध्यान में विघ्न उपस्थित होगा अतः अपने साथियों को दूर छोड़ और इने गिने लोगों को साथ ले वे रामचन्द्र के आश्रम को इधर उधर उस पर्वत पर ढूँढ़ने लगे । कुछ देर तक ढूँढ़ने पर कुछ ही दूर पर उनको धुवाँ दीख पड़ा—इससे उन्होंने अनुमान किया कि जहाँ से वह धूम निकल रहा है—वहीं पर श्रीरामचन्द्र जी की कुटी होगी और तबवे उस ओर बढ़े ।

नवाँ अध्याय ।

अनिष्ट की शङ्का करने वाले लक्ष्मण को रामद्वारा समझाया जाना ।

उधर पर्वतस्थ निर्जन रमणीय वन के बीच, भाई और पत्नी सहित, पर्णकुटीवासी सन्तुष्टचेताः रामचन्द्र ने अचानक बहुत से लोगों का आना जाना, और उनका कोलाहल

१—किसी किसी का कहना है कि भरत जी को वहाँ के रहने वाले ऋषियों ने रामचन्द्र जी का आश्रम स्वयं जा कर बतलाया था ।

सुन, लक्ष्मण से उसका कारण जानने को कहा। लक्ष्मण कुटी के पास के एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गये और इधर उधर देख क्रोध में भर उन्होंने भरत के आने की रामचन्द्र को सूचना दी। धर्मपरायण भरत से किसी भी प्रकार के अनिष्ट की शङ्का की सम्भावना न बतला, क्रुद्ध लक्ष्मण को राम ने शान्त किया।

राम और भरत का साक्षात्कार

जिस समय रामचन्द्र और लक्ष्मण की इस प्रकार परस्पर बातचीत हो रही थी—उसी समय अचानक, तापसवेशी भरत उस स्थान पर जा पहुँचे और रामचन्द्र को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर लक्ष्मण को आशीर्वाद दिया।[1] कैकेयीपुत्र का ऐसा व्यवहार देख वे दोनों भाई आनन्द और शोक में डूब गये। इसके बाद कौशल्या, सुमित्रा, आदि रानियाँ मंत्रिवर्ग और वशिष्ठ, जाबालि[2] प्रभृति ऋषि-

१—(मतान्तरे)

" विलोकयन्तं जनकात्मजां शुभां सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम्।
तदाभिदुद्राव रघूत्तमं शुचा हर्षाच्च तत्पादयुगं त्वराग्रहीत्॥"

२—कश्यपवंशीय—जाबालि ने बहुतसे पुराण सुने थे। वाल्मीकि-रामायण में रामचन्द्र जी को अयोध्या लौटाने के लिये इन्होंने रामचन्द्र जी के सामने नास्तिकवाद से काम लिया था, जिसे सुन रामचन्द्र जी बहुत अप्रसन्न हुए थे और क्रुद्ध हो कहा था कि जाबालि जैसे परामर्श-दाता को अपने पास रख महाराज दशरथ ने बड़ी भारी भूल की। तदनन्तर वशिष्ठ जी ने समझा बुझा कर रामचन्द्र जी को शान्त किया और उनके मन से जाबालि के नास्तिक होने की बात हटा दी थी। जाबालि नास्तिक न होने पर भी खुशामदी कहे जा सकते हैं।

गया वहाँ जा पहुँचे और अपने अपने पद की मर्य्यादा-नुसार राम लक्ष्मण और सीता को अभिवादन किया अथवा आशीर्वाद दिये भरत के मुख से पिता के परलोक-वास का दुःखदायी संवाद सुन राम लक्ष्मण सीता अत्यन्त शोकान्वित हुए और उन्होंने देश काल पात्रानुसार प्रेत-क्रिया पूरी की। तदुपरान्त अयोध्या से आये हुए लोगों ने रामचन्द्र जी से अयोध्या लौट चलने का अनुरोध किया।

भरत का अयोध्या को लौटना।

सुपण्डित विचक्षण रामचन्द्र ने विनीत वचन और शास्त्र-सङ्गत प्रमाण द्वारा सिद्ध किया कि पिता की आज्ञा पालन करना उनका कर्त्तव्य ही नहीं किन्तु धर्म है। साथ ही उन लोगों की इस निश्चय के विरुद्ध बात न मानने के लिये उन्होंने उन सब से क्षमा माँगी और कहा कि पिता की आज्ञानुसार छोटे भाई भरत को तुम लोग ले जा कर अयोध्या के राजसिंहासन पर बिठाओ। दृढ़व्रत रामचन्द्र को उनकी प्रतिज्ञा से डिगाने में असमर्थ हो, नीतिज्ञ भरत ने कहा—भैया! मैं चौदह वर्ष तक आपकी चरण-

१—(मतान्तरे) जब रामचन्द्र अयोध्या लौटने को राजी न हुए और भरत जी अपने प्राण देने के संकल्प से अनाहार रह राम की कुटी के द्वार पर धरना दे पड़ रहे, तब रामचन्द्र के इशारे से वशिष्ठ ने रावणवधार्थ रामचन्द्र जी के वनगमन का गुप्त रहस्य उनको समझा दिया था। तब भरत माने थे। क्षमाप्रार्थिनी कैकेयी को जब अपने किये असद् व्यवहार का कारण सरस्वती ज्ञात पड़ी, तब वे भी शान्त हुईं।

पादुकाओं को अयोध्या के राजसिंहासन पर रख और फलमूलाहारी हो एवं तपस्वीवेश से अयोध्या का शासन करूँगा। यदि चौदह वर्ष बाद आप न आये तो मैं अग्नि में कूद भस्म हो जाऊँगा। यह कह और भक्तिभाव से पादुकाओं को सिर पर रख, हताश और रोते हुए भरत, अपने साथियों के साथ अयोध्या की ओर लौटे।

नन्दिग्राम में तपस्वीवेश-धारी भरत का रहना

चित्रकूट से लौट भरत ने अयोध्या में पैर न रखा। वे अयोध्या से कुछ दूर के अन्तर पर नन्दिग्राम में रहने लगे। उन्होंने प्रतिज्ञानुसार रामचन्द्र जी की पादुकाओं को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया और उन पर चँवर फेर रामचन्द्र जी की अनुपस्थिति में उनकी ओर से अयोध्या का शासन और प्रजापालन किया।

रामचन्द्र का चित्रकूट छोड़ना।

भरत के जाने पर, चित्रकूट पर्वत पर रहने वाले आश्रमवासी कुलपति[1] ऋषि, दण्डकारण्य में रहने वाले, खर आदि राक्षसों के उपद्रवों से उत्पीड़ित हो, वहाँ से अन्यत्र जाने के समय रामचन्द्र से कह गये कि आप भी यहाँ से हट जाइये। अतः मुनियों के उपदेशानुसार और

१—कुलपति की परिभाषाः—

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात् ।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः ॥

२—वाल्मीकि कहते हैं कि चित्रकूट में रामचन्द्र जी के आवासस्थान से भरत के साथ आये अयोध्यावासी परिचित हो गये थे और उनके नित्य नित्य वहाँ आने की आशङ्का और उनके आगमन से तत्रस्थ ऋषियों के तप में विघ्न पड़ने की आशङ्का से रामचन्द्र ने स्वयं चित्रकूट छोड़ा था।

अयोध्या के लोगों के परिचित उस स्थान को छोड़ना उचित समझ, वे उस स्थान को छोड़, अत्रिमुनि[1] के आश्रम की ओर चल दिये। वहाँ पर महर्षि अत्रि ने रामचन्द्र की अभ्यर्थना की और उनकी स्त्री पतिव्रता-शिरोमणि अनसूया[2] ने जानकी को फूलों के आभूषणों से अलंकृत किया। राम लक्ष्मण और सीता अत्रिमुनि के आश्रम में एक रात रह कर, और नरमांस-भोजी तथा यज्ञ-विघ्न-कारी राक्षसों का नाश करने के लिये, महर्षि के बतलाये दण्डकारण्य के मार्ग को धर आगे चले।

दसवाँ अध्याय।

रामचन्द्र का दण्डकारण्य में प्रवेश।

श्वापदसंकुल दण्डक महावन में प्रवेश कर, और दक्षिण की ओर चलते चलते रामचन्द्र अनुज और स्त्री सहित तेजस्वी ऋषियों द्वारा सेवित एक आश्रम में पहुँचे। वहाँ उनका सत्कार किया गया। तदनन्तर यज्ञ-विघ्न-कारी राक्षसों का नाश करने के लिये वे विकट वन की ओर चल दिये।

१—अत्रिमुनि—इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के नेत्र से हुई है। मनुक्त एक प्रजापति और सप्तर्षियों में से एक। ये दत्त, दुर्वासा और चन्द्र के पिता तथा अनेक वेदमंत्रों के प्रचारक कहे जाते हैं।

२—अनसूया—कर्दम प्रजापति की कन्या और कपिलमुनि की बहिन।

N-K-P
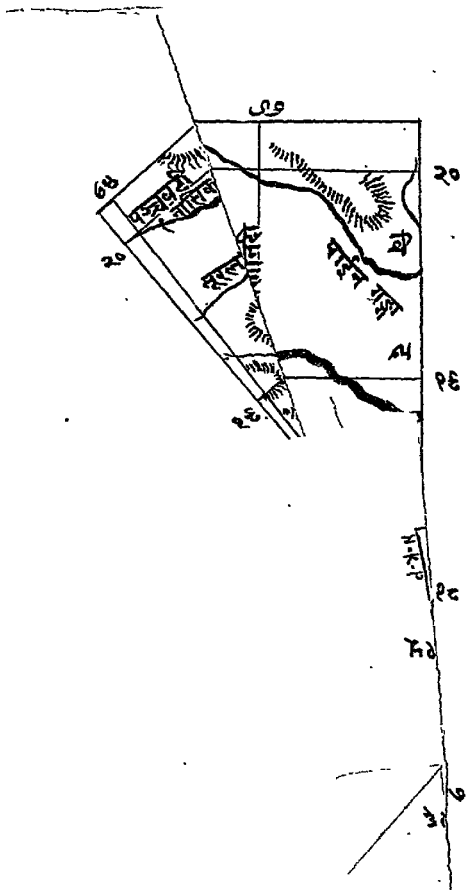
रास्ते में कई एक मारे हुए सिंह, व्याघ्रादि को पीठ पर लादे हुए, विराध नाम का एक भयंकर राक्षस जानकी की ओर दौड़ा । तब रामचन्द्र जी के प्रचण्ड बाणों से रोके जाने पर उस दुरन्त राक्षस ने सीता को तो छोड़ दिया और वह राम लक्ष्मण को पकड़ और अपने कन्धों पर रख बड़ी तेज़ी से भागने को उद्यत हुआ । लक्ष्मण के परामर्श से राम ने उसकी बाँहें तेज तलवार से काट डालीं तब तो रामचन्द्र जी का परिचय पा कर, वह अपने पूर्वजन्म का हाल विनयपूर्वक कहने लगा । उसने अपने को पूर्वजन्म में तुम्बुरु नाम का गन्धर्व बतलाया और कहा कि रम्भा के फेर में पड़ जब मैं अपने कर्त्तव्य कार्य में शिथिल हुआ तब कुबेर ने मुझे राक्षस हो जाने का शाप दिया और कहा कि रामचन्द्र के हाथ से तू मेरे शाप से छुटकारा पावेगा । विराध उस भयंकर शरीर को त्याग तुरन्त सुन्दर गन्धर्व हो गया ।

विराध राक्षस के साथ युद्ध।

तदनन्तर उसके मृतशरीर के टुकड़े टुकड़े कर, राम लक्ष्मण ने उन्हें ज़मीन में गाड़ दिये । जब उस भयंकर राक्षस का मृतशरीर पृथिवी में गाड़ दिया गया तब वह सुन्दर गन्धर्व, शरीर धारण कर और शापमोचनकारी श्रीरामचन्द्र को प्रणाम कर तथा वहाँ से आधे योजन के अन्तर पर महर्षि शरभङ्ग के आश्रम का पता बतला आकाशमार्ग से चल दिया । राम तुम्बुरु-निर्दिष्ट

शरभङ्ग ऋषि का आश्रम।

मार्ग पर चल, यथासमय शरभङ्ग मुनि के आश्रम में पहुँचे । उस समय वे अनेक दिवाकर सदृश तेजःपुञ्ज देवताओं से घिरे हुए आकाश स्थित विमान में बैठे देव-राज इन्द्र से बातचीत कर रहे थे ।

रामचन्द्र का सुतीक्ष्णआदि मुनियों के आश्रमों में जाना।

जब बातचीत कर इन्द्र चले गये तब कुटी बनाने के लिये स्थान की खोज में घूमते हुए रामचन्द्र का उन्होंने यथाविधि सम्मान किया और पास ही महातेजा: सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में उनसे सीता लक्ष्मण सहित जाने को कहा और वे स्वयं तुरन्त होमाग्नि में अपने शरीर को होम कर ब्रह्मलोक को चल दिये । रामचन्द्र अपरापर मुनियों से सम्पूजित हो, परलोकगत शरभङ्ग के आदेशा-नुसार सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में गये । वहाँ उनके अनुयायी अन्य तपोधन ऋषियों से मिले और उनके दर्शन करते हुए उन्होंने परम सुख से वनवास के दस वर्ष पूरे किये । तदनन्तर अगस्त्य[1] मुनि के दर्शन करने के लिये वे आगे बढ़े ।

१—अगस्त्य मुनि—जिस समय समुद्र के भीतर असुर रह कर घोर अत्याचार करने लगे—उस समय इन्द्र समुद्र का जल सुखाने लगे । तब उनके आदेश को पालने के लिये अग्नि और वायु देव ने भूलोक में जन्म लिया । पीछे अप्सरा उर्व्वशी पर आसक्त मित्र और वरुण के औरस से घड़े में जन्म लेने के कारण उनका नाम वशिष्ठ और अगस्त्य पड़ा । ये कुम्भयोनि भी कहलाते हैं । अगस्त्य द्वारा समुद्र का सुखाया जाना और विन्ध्यगिरि का मर्दन प्रसिद्ध है । अब ये आकाश में नक्षत्र रूप से विराज रहे हैं ।

इल्वल और वातापि संवाद।

चलते चलते रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा कि सुतीक्ष्ण के बतलाये हुए चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं । अतएव जान पड़ता है कि भगवान् अगस्त्य के भाई[1] का स्थान यही है । फिर कहा भाई, सुनो अगस्त्य कैसे प्रभावशाली ऋषि हैं । वातापि और इल्वल दो[2] राक्षस थे जो यहीं रहा करते थे । वे बड़े क्रूरकर्मा थे । इल्वल ब्राह्मण का वेष धारण कर संस्कृत बोलता हुआ, ब्राह्मणों को श्राद्ध के बहाने निमंत्रण दे आया करता था और अपने भाई वातापि को जो भण्डारी बनता था, मार कर उन लोगों को खिला देता था । पीछे से वह यह कर बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगता-"भाई! निकल आओ।" यह सुनते ही वह बकरे की तरह बोलता हुआ ब्राह्मण का पेट फाड़ कर निकल आता था । इस रीति से उन दुष्टों ने हज़ारों ब्राह्मणों को मार डाला था । अन्त में सब ब्राह्मणों ने मिल अगस्त्य से प्रार्थना की । एक दिन अगस्त्य को भी उसने निमंत्रण दे वही चाल चली जो दूसरों के साथ वह चला करता था । पर अगस्त्य ने उसे पचा डाला । इस पर उसके भाई इल्वल ने अगस्त्य को मारना चाहा, पर उन्होंने उसे भस्म कर डाला ।

१-अगस्त्य के भाई का नाम इध्मवाहु था ।

२-इल्वल और वातापि-राहु के दोनों पुत्र थे । कोई कोई इल्वल का वासस्थान इलौरा की गुफाएँ बतलाते हैं ।

रामचन्द्र और अगस्त्य ।

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे तीनों अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे, और मुनि को प्रणाम कर वनवास का शेष काल व्यतीत करने के लिये उनसे रहने को कोई उपयुक्त स्थान बतलाने को कहा । रामचन्द्र जी की बातों को सुन महर्षि प्रसन्न हुए और उनको इन्द्र का दिया हुआ हीरा जटित सुवृहत् विष्णुधनुष, अमोघ ब्रह्मास्त्र, और काञ्चनभूषित भयंकर खड्ग दिया । तदुपरान्त कहा कि यहाँ से दक्षिण की ओर दो योजन जाने पर गोदावरी के तट पर पञ्चवटी[1] नामक रमणीय पार्वत्य प्रदेश मिलेगा— वहीं आप कुटी बना कर रहें ।

ग्यारहवाँ अध्याय ।

रामचन्द्र का पञ्चवटी गमन और जटायु के साथ साक्षात्कार

अगस्त्य के कहने के अनुसार पञ्चवटी की ओर जाते समय, वन में श्रीरामचन्द्र जी को एक बड़ा पक्षी देख पड़ा। परिचय पूँछने पर उस तत्त्वज्ञ विहंगराज ने अपने को गरुड़-पौत्र जटायु और स्वर्गवासी महाराज दशरथ का मित्र बतलाया । पिता का मित्र[2] जान, श्रीरामचन्द्र ने महावली

१—पञ्चवटी—गोदावरी के उत्तर तट पर नासिक नगर के पास पञ्चवटी का मन्दिर है । यहाँ अब केवल पाँच वटवृक्षमात्र रह गये हैं ।

२—दशरथ जब गद्दी पर बैठे, तब उनके राज्य में अनावृष्टि हुई । इसका कारण शनिग्रह की कुदृष्टि समझ महाराज दशरथ ने शनि से युद्ध किया । युद्ध करते समय दशरथ का रथ आकाश से गिरा । उस समय जटायु ने अपने पर फैला कर दशरथ के रथ को रोपा और उसे पृथिवी पर नहीं गिरने दिया था—इसीसे दशरथ ने जटायु के साथ मैत्री कर ली थी । अन्त में दशरथ ने ग्रहराज और देवराज को सन्तुष्ट किया और इससे उनके राज्य में जल गिरा ।

जटायु को प्रणाम कर उससे अपना सारा हाल कहा और यह भी कहा कि उनका विचार पञ्चवटी में कुटी बना कर रहने का है । यह सुन सहृदय विहंगराज ने वह जानकी की रक्षा का भार ले—उनके साथ पञ्चवटी की ओर प्रस्थान किया । यथासमय वे सब अगस्त्य जी के बतलाये स्थान पर पहुँच गये और उस निर्जन और स्वभाव ही से सुन्दर स्थान को देख बहुत प्रसन्न हुए और आज्ञाकारी लक्ष्मण की बनाई पर्णकुटी में रह, उसी प्रकार दिन व्यतीत करने लगे जिस प्रकार वे चित्रकूट पर्वत की कुटियों में किया करते थे ।[1]

राम की कुटी में शूर्पणखा का गमन ।

एक दिन निशाचरराज रावण की भगिनी और जनस्थानवासिनी शूर्पणखा[2] घूमती फिरती रामचन्द्र की पर्णकुटी के समीप जा निकली । वहाँ वह रामचन्द्र जी के सौन्दर्य को देख उन पर मोहित हो गयी और निर्लज्ज

१—राम ने वनवास की अवधि के १३ वर्ष से अधिक इधर उधर घूम फिर कर उन ऋषियों के आश्रमों में बिताये तो चित्रकूट और आधुनिक नासिक नगर के बीच में बसे थे ।

२—शूर्पणखा—किसी समय पूर्वकाल में एक राजा अपनी कन्या के विवाह के लिये एक वर खोज कर लाया, किन्तु राजा ने किसी कारण वश उसका विवाह न कर उसे वैसे ही लौटा दिया । इस पर अप्रसन्न हो उसने नृपतनया को शाप दिया कि वह अगले जन्म में कामचारिणी राक्षसी हो कर जन्मे । वही नृपतनया दूसरे जन्म में शूर्पणखा हुई । नारायण को पतिरूप से वरने की कामना से और नारद जी के परामर्श से जब शूर्पणखा ने बहुत तप किया, तब वह द्वापर युग में कुब्जा हुई ।

हो उन्हें अपना पति बनाने का उसने उनसे प्रस्ताव किया। हँसी हँसी में राम ने सीता को दिखा उससे कहा कि हमारे तो स्त्री है, पर द्वार पर बैठे लक्ष्मण अभी कारे हैं—तू उनके पास जा। तब वह राक्षसी लक्ष्मण के पास गयी और उसने उनको अपना अभिप्राय जतलाया। लक्ष्मण ने कहा बड़े भाई के सामने छोटे भाई का विवाह करना अनुचित है अतः तू राम ही के पास जा इस बार जब राम ने उसे फिर लौटाया तब वह राक्षसी बहुत क्रुद्ध हो और सीता को अपने अभिप्राय की सिद्धि में बाधक समझ उनको खाने को दौड़ी।

शूर्पणखा के नाक और कानों का काटा जाना।

शूर्पणखा के इस अनुचित कृत्य को देख कुपित लक्ष्मण ने एक पैने खड्ग से उसकी नाक और दोनों कान काट डाले। तब तो वह चिल्लाती रोती वहाँ से भाग कर, जनस्थान की रक्षा के लिये नियुक्त अपने भाई खर के पास गयी और अपने नाक कान काटे जाने का मनगढ़न्त कारण बतला अपने को निर्दोष सिद्ध किया। निरपराधा भगिनी के साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार हुआ सुन, खर ने अपनी बहिन को समझा बुझा कर शान्त किया और अत्यन्त बली चौदह राक्षसों को शूर्पणखा के साथ शत्रु से बदला लेने के लिये भेजा।

१—लक्ष्मण ने शूर्पणखा के जिस जगह नाक कान काटे थे वह अब नासिक के नाम से प्रसिद्ध है।

चौदहों राक्षसों का मारा जाना।

विकृतरूपा शूर्पणखा के साथ उन भयंकर राक्षसों को बड़े वेग से आते देख, और उनका दुष्ट अभिप्राय समझ, राम ने जानकी की रक्षा का भार लक्ष्मण को सौंपा और स्वयं उनसे लड़ने के लिये कुटी से निकल बाहिर आये। तब शूर्पणखा के बतलाने पर वे चौदहों राक्षस एक साथ श्रीरामचन्द्र जी पर टूट पड़े। किन्तु स्थिरबुद्धि एवं रण-कुशल रघुवंशमणि ने बड़ी तेज़ी के साथ उन चौदहों के चलाये अस्त्र शस्त्रों को काट कर फेंक दिया और एक एक कर के उन सबको धराशायी कर वे हँसते हुए कुटी में चले गये।

राम के साथ खर आदि का युद्ध।

रोती हुई शूर्पणखा के मुख से अकेले राम द्वारा उन चौदहों के मारे जाने का क्रोध बढ़ाने वाला संवाद सुन, खर के क्रोध की सीमा न रही। उसने सेनापति दूषण तथा त्रिशिरा को बुला कर चौदह हज़ार सैनिकों को तैयार कराया और शूर्पणखा के बतलाये रास्ते से—उन सबको अपने साथ ले रामचन्द्र जी के ऊपर चढ़ दौड़ा। उसे आते देख रामने तुरन्त ही लक्ष्मण सहित सीता को एक सुरक्षित गुफा में पहुँचा दिया और अकुतोभय अकेले राम स्वयं धनुष बाण हाथ में ले शत्रु के सामने हुए। फिर क्या था राक्षसों ने उन पर असंख्य अस्त्रों की वर्षा करनी आरम्भ की।

ससैन्य खर का मारा जाना

विचित्र रणशिक्षा के प्रभाव से श्रीरामचन्द्र ने थोड़ी

ही देर में सारे राक्षसों के चलाये अस्त्रों को विफल कर दिया और बहुतसे सैनिकों को मार कर अमोघ अस्त्र से दूषण तथा अन्य दुर्धर्ष सेनापतियों को मार गिराया। यह देख खर स्वयं राम से लड़ने को उनके सामने गया। थोड़ी ही देर में राम ने उसे और उसके साथी बचे हुए सैनिकों को यमलोक भेज दिया। फिर अश्रान्त अतुल-विक्रम राम प्रसन्न होतेहुए अपने भाई लक्ष्मण और त्रस्ता जानकी के पास पहुँचे।

अकम्पन द्वारा रावण का खरदूषणादि के मारे जाने का वृत्तान्त सुनना।

मारे जाने से बचे हुए राक्षसों में से अकम्पन नामक राक्षस अति शीघ्र लंका में जा पहुँचा और उसने रावण से स्वर्गवासी महाराज दशरथ के पुत्र राम के हाथ से जनस्थानवासी खरदूषण आदि के मारे जाने का हाल कहा। साथ ही राम को युद्ध में अजेय और अनिवार्य बतला रावण से यह भी कहा कि आप छल से उनकी सुन्दरी स्त्री को हर कर, उनसे अपनी बहिन के नाक कान काटने का बदला लें।

बारहवाँ अध्याय।

राम-भार्या-हरणोत्सुक रावण को मारीच का समझाना।

अकम्पन के परामर्श से सन्तुष्ट और सम्मत हो दुर्मति रावण तुरत ही रथ पर सवार हो, समुद्र पार ताड़कापुत्र मायावी मारीच के पास गया और उसको अपना अभि-प्राय जतला कर, सीता-हरण में उससे सहायता माँगी।

रावण की बातें सुन भीत मारीच ने, अपनी दुर्दशा कह सुनायी जो विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालने जा कर उसकी हुई थी फिर उसने यह भी कहा कि सोते हुए रामचन्द्ररूपी सिंह को जगा कर उपद्रव खड़ा मत करो । इसी प्रकार मारीच ने इस अनर्थ से रावण को अनेक प्रकार से समझा बुझा कर रोका ।

सीताहरण करने के लिये शूर्पणखा का रावण को उत्तेजित करना।

अपने भाई लङ्केश्वर रावण को रामचन्द्र से बदला लेने में उदासीन देख, सब अनर्थों की जड़ शूर्पणखा रावण के पास गयी और मर्मभेदी कटाक्षयुक्त वचनों से उसको धिक्कारने लगी । उसने अपने भाई पर कृतज्ञता का बोझ रखते हुए यह भी कहा कि–"मुझे क्या पड़ी थी जो मैं राम के छोटे भाई लक्ष्मण से अपने नाक कान कटवाती। मैं तो तेरे लिये ही रामभार्या परमरूपवती सीता को लाने गयी थी। तेरे इस काम में मेरे नाक कान तो गये ही– साथ ही निरपराध बेचारे खरदूषण सहित तेरे चौदह हज़ार राक्षस सैनिकों को भी राम ने मार डाला।" यह कह कर शूर्पणखा बिलख बिलख कर रोने लगी। तब बहिन की इन कातरोक्तियों को सुन और उसका विकृतरूप देख, और रमणीरत्न सीता के पाने के प्रबल लोभ के वशवर्त्ती हो और बदला लेने के अभिप्राय से रावण का मन विचलित हुआ। मारीच ने गुणकारी जिस ओषधि को पिला कर रावण का उन्माद रोग दूर किया था–उसका असर,

शूर्पणखा ने दूर कर दिया । रावण अपनी नकटी बहिन को शान्त कर, तुरन्त फिर मारीच के पास गया ।

मारीच का मायारूपी मृग का रूप धारण करना ।

फिर से आये हुए रावण को सीताहरण में स्थिर-प्रतिज्ञ देख, विह्वल-चित्त, तपश्चाचारी मारीच ने जब अनेक प्रकार से अनुनय विनय कर फिर भी उसे सम-झाया, और रामचन्द्र के विरुद्ध खड़े होने में अपनी अनिच्छा प्रकाश की—तब तो रावण उसीके प्राण लेने पर उतारू हुआ । अन्त में राम के हाथ से मारे जाने में अपना कल्याण समझ, ताड़का-पुत्र मारीच, कुटिल रावण के परामर्शानुसार काम करने के लिये राज़ी हो कर उसके साथ पञ्चवटी पहुँचा । वहाँ उसने माया के बल से अपने को मणिमुक्ताखचित, नयनानन्दकर सुवर्ण का मृग बनाया और राम की पर्णकुटी के पास जाके उद्यान में पुष्प-चयन करती हुई सीता जी के सामने वह दूब चरने लगा ।

रामचन्द्र का उस माया-मृग के पीछे जाना ।

इस अपूर्व मृग को देख सीता जी विस्मित हुईं और तुरन्त ही स्वामी और देवर को अपने पास बुला उनसे उस मृग को पकड़ने का अनुरोध किया । वैसे अस्वाभा-विक मृग को राक्षसी माया जान कर, और अनर्थ की आशंका से लक्ष्मण ने अपने बड़े भाई को सतर्क रहने का परामर्श दिया । किन्तु सीता को उस मृग के लिये उत्सुक देख और उन्हें प्रसन्न करने के लिये, लक्ष्मण

और जटायु को सीता की रक्षा में सावधान रहने का उपदेश दे और धनुष उठा श्रीरामचन्द्र निःसङ्कोच भाव से उस हिरन के पीछे हो लिये।

मृगरूपी मारीच का वध।

जब राम उस मृग के पीछे पीछे बहुत दूर निकल गये और वह न पकड़ मिला तब उसके जीवित पकड़ने की आशा परित्याग कर और उसके चर्म द्वारा सीता को सन्तुष्ट करने के लिये उन्होंने उसके एक ऐसा बाण मारा जिसके लगते ही वह पृथिवी पर गिर पड़ा। विषम प्रहार के लगते ही उसने मायारूपी मृग का रूप छोड़ और अपने असली रूप में आ—चिल्ला कर और आर्त्तनाद कर के सीता और लक्ष्मण को पुकारता हुआ वह मर गया।

तिरस्कृत लक्ष्मण का राम की खोज में जाना।

वैसे आर्त्तस्वर में दूर से अपना नाम सुन, कुटी में बैठी सीता जी ने, अपने स्वामी को सङ्कट में फँसा जान, व्यग्र हो उनकी सहायता के लिये तुरन्त जाने का लक्ष्मण से आग्रह किया। सीतादेवी के भय को बेजड़ बतला और उन्हें अकेली छोड़ कर जाना लक्ष्मण ने अनुचित समझा। इस पर सीता जी ने क्रोध के आवेश में भर लक्ष्मण जी से बहुतसी अनकहनी बातें कह उनका तिरस्कार किया। उन तिरस्कृत वाक्यों को सुन लक्ष्मण व्यथित हुए और सीता जी से सावधान रहने का वारम्बार अनुरोध कर वे दुःखित मन हो राम की खोज में कुटी छोड़ चल दिये।

तेरहवाँ अध्याय ।

रावण द्वारा सीता का हरा जाना ।

इस प्रकार कुटिल चातुर्य्य से राम और लक्ष्मण को कुटी से दूर भेज, छिपा हुआ ब्राह्मणवेशधारी दुर्मति रावण उस स्थान को निराला देख कुटी में चिन्तामग्न बैठी हुई जानकी के पास जा आतिथ्य का प्रार्थी हुआ। ब्रह्मशाप से भीत सीता ने सारी चिन्ताएँ छोड़ उसका यथाशक्ति आतिथ्य किया। किन्तु वह दुर्वृत्त तो उनके रूपलावण्य की प्रशंसा कर के, वनवासी अनुपयुक्त पति के साथ, हिंस्रजन्तु पूर्ण अरण्य में उनका घूमना अयोग्य बतलाने लगा फिर उसने अपने को लङ्केश्वर बतला और अपना असली रूप धारण कर, साथ चलने का सीता जी से अनुरोध किया। इन असाधु वाक्यों को सुन सीता जी ने जब उसका तिरस्कार किया; तब रावण ने विलम्ब करने से हानि समझ, बलपूर्वक भयविह्वला और चिल्ला कर रोती हुई असहाया सीता को उठा, पास खड़े रथ पर बिठा लिया और तेजी के साथ रथ हाँका।

रावण द्वारा जटायु का पराभव ।

कुटीर से कुछ ही दूर एक वृक्ष पर सोता हुआ जटायु सीता के रोने का शब्द सुन जाग गया और रावण द्वारा सीता जी को ले जाते देख, क्रोध में भर वह रथ के सामने जा डटा। तेजस्वी जटायु को विघ्नरूप सामने देख, कुपित रावण उससे भिड़ गया। तब जटायु ने उसका रथ चूर चूर

दूर दिया। पर रावण, जटायु से बलवान् था अतः उसने तलवार से उसके दोनों पर काट कर उसे ज़मीन पर गिरा दिया और रोती हुई सीता को गोद में ले, हवा की तरह आकाशमार्ग से लंका की ओर चल दिया।

पर्वतस्थ वानरों के पास सीता का आभूषण फेंकना।

जटायु के साथ युद्ध करते समय रथहीन रावण की खींचाखाँची में सीता की पुष्पमालाएँ तथा आभूषण टूट टूट कर उनके जाने का मार्ग बतलाने वाले चिह्नों की तरह इधर उधर गिर पड़े। पर रावण ने इनकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया और वह भागाभाग लंका की ओर गया। रास्ते में एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर बैठे हुए पाँच वानरों को बड़े ध्यान से अपनी ओर देखते देख, रावण की दृष्टि बचा कर सीता ने उनकी ओर ओढ़नी के एक टुकड़े में गठिया कुछ आभूषण फेंक दिये।

रावण द्वारा लङ्का में सीता का अशोक-वन में रखा जाना।

थोड़ी ही देर में रावण सीता को लिये हुए और समुद्र को पार कर, लंका में जा पहुँचा। पहले तो उसने अपना सारा वैभव दिखाया और उसे सब रानियों के ऊपर अपनी पटरानी बनाने का लोभ दिया, पर जब किसी प्रकार भी सीता राज़ी न हुईं, तब अपने महल क पास वाले अशोकवन[1] नामक बाग़ में उसने उनको रखा और उनके ऊपर राक्षसियों का पहरा नियत कर के उन पहरे वालियों को धमका दिया कि लोभ, भय दिखा—

१—अशोकवन अब भी विद्यमान है।

जैसे हो वैसे सीता को मेरे वश में कर दो । रावण स्वयं भी प्रायः सीता के पास जा कर उसको अपने वश में करने के लिये वहुतसी वातें वनाया करता था ।

चौदहवाँ अध्याय ।

मायामृग को मार, लक्ष्मण सहित राम का मुनीकुटी में पहुँचना ।

इधर रामचन्द्र जी मायामृग को मार जब कुटी की ओर लौटे आ रहे थे, तब उनको बीच में लक्ष्मण मिले । अकेली जानकी को कुटी में छोड़ आने का कारण सुन और अमंगल की आशंका कर, जल्दी जल्दी वे अपनी कुटी की ओर गये। वहाँ सीता को न देख, उनका सन्देह दृढ़ हो गया—और दोनों भाई, आस पास के वन नदी पर्वत गुफा आदि को ढूँढ़ने लगे । तब मृग एवं पक्षियों के संकेत को समझ वे दक्षिण की ओर वढ़े ।

जटायु की मृत्यु और उसकी अन्त्येष्टि क्रिया ।

कुछ ही दूर आगे जाने पर, टूटे हुए अस्त्र, रक्त के छींटे आदि युद्ध के चिह्नों को देख, वे विस्मित हो इधर उधर देखने लगे । कुछ ही क्षणों वाद पृथिवी पर पड़े मृत-प्राय जटायु को उन्होंने देखा और उसके मुख से सुना कि विश्रवा का पुत्र, कुवेर का भाई, राक्षसराज रावण सीता को हर ले गया है और सीता को उससे छुड़ाने में उसकी यह दुर्दशा हुई है । जटायु के मुख से यह हाल सुन और उसकी शोच्य दशा देख दोनों भाई वहुत दुःखी हुए । उससे राम ने अनेक वातें कहीं सुनीं । उनमें से एक यह भी थी :—

दोहा ।

सीताहरण तात जनि, कहसि पिता सन जाइ ।
जो मैं राम तो कुलसहित, कहिहि दशानन आइ ॥

जटायु, श्रीराम जी के पिता दशरथ का मित्र था—सो स्वर्ग में जा कर उनसे बातों ही बातों कहीं वह सीताहरण का संवाद न कह दे। इससे दशरथ को तो दुःख होता ही, किन्तु साथ ही श्रीरामचन्द्र जी के आत्माभिमान में बड़ा धक्का पहुँचता अतः राम ने जटायु से कहा कि तुम सीता का हरा जाना दशरथ से मत कहना। यदि मैं राम हूँ तो रावण स्वयं सपरिवार जा कर यह वृत्तान्त उनसे कहेगा। अस्तु, रामचन्द्र जी से बातचीत कर जटायु परलोक सिधारा। तब राम ने यथासम्भव जटायु की विधिवत् अन्त्येष्टि क्रिया की। तदुपरान्त वे फिर सीता जी की खोज में इधर उधर घूमने लगे। रास्ते में जब राम जी अत्यन्त मोहवश हो जाते थे, तब लक्ष्मण उनको समझा बुझा कर शान्त कर दिया करते थे। सीता के फेंके हुए पुष्प तथा आभूषणों के सहारे दोनों भाई दक्षिण की ओर बढ़े चले गये।

आतृद्वय का कबन्ध के हाथ में पड़ना।

रास्ते में उन्हें विकटदर्शन कवन्ध नामक एक राक्षस ने पकड़ लिया। तब तीक्ष्ण खड्ग से बाहें काटे जाने पर और रामचन्द्र का परिचय पा कर कबन्ध अपना वृत्तान्त कहने लगा कि मेरा असली नाम दनु है। किसी समय मैंने भयंकर रूप बना—स्थूलशिर नामक ऋषि को क्रुद्ध किया। उनके ही शाप से मेरा ऐसा भयंकर रूप हो गया।

जब मैंने उनकी अनुनय विनय की, तब प्रसन्न हो उन्होंने कहा कि राम और लक्ष्मण के मिलने पर तेरी मुक्ति होगी। पीछे मैंने तप कर ब्रह्मा से दीर्घायु पायी और अभिमान में चूर हो इन्द्र का तिरस्कार किया। इस पर उन्होंने मेरे वज्र मारा, जिससे मेरी दोनों जाँघें और मस्तक शरीर में घुस गया। मेरे जीने के लिये मेरी भुजा योजन भर लम्बी बना दी जिनसे मैं जीवों को पकड़ कर खाया करूँ। आप मुझे मिले—सो आप मुझे जला कर मेरी मुक्ति कीजिये। तदनुसार राम ने कबन्ध के शरीर को दग्ध किया। उसी समय वह सुन्दर रूपधारी दानव हो गया और उसने कहा कि आप मतङ्ग मुनि के आश्रम के सामने वाले ऋष्यमूक[1] पर्वतवासी सर्वदेशज्ञ सुग्रीवादि वानरों से मैत्री कीजिये। उन्हींके साहाय्य से सीता आपको मिलेगी। यह कह वह आकाशमार्ग से चला गया।

रामचन्द्र का तापसी शबरी के आश्रम में गमन।

उस दानव के परामर्शानुसार, जाते हुए शोकार्त्त दोनों भाई रास्ते में तापसी शबरी के आश्रम में पहुँचे। उसने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और बहुतसी बातें

१—ऋष्यमूक—एक यात्री ने लिखा है कि किष्किन्धा से ४ कोस के अन्तर पर ऋष्यमूक और ऋष्यमूक की तलहटी में पम्पा नामक सरोवर से एक नदी बहती है इस सरोवर का जल उस छोटी नदी द्वारा पास ही बहने वाली तुङ्गभद्रा नदी में गिरता है। मतंग सरोवर पम्पा का अंशमात्र है। पम्पा के पश्चिम में शबरी का आश्रम है। वहाँ से कुछ ही दूर हट कर, सुग्रीवादि के रहने की एक गुफा है।

बतलायीं । फिर ऋषियों के दिये हुए वर के प्रभाव से राम और लक्ष्मण के सामने उसने देह त्यागी और वह तपः-सिद्धा तापसी स्वर्ग को चली गयी ।

जानकी-विरहकातर रामचन्द्र साथी लक्ष्मण के साथ सुग्रीवादि वानरों से मिलने के लिये शीघ्र वहाँ से चल दिये ।

पन्द्रहवाँ अध्याय ।

राम लक्ष्मण को देख कर सुग्रीव का भयभीत होना और उनके पास हनुमान् को भेजना ।

चलते चलते दोनों भाई पम्पासर के समीप पहुँचे । वहाँ की प्राकृतिक शोभा देख, सीता जी की वियोगवेदना से रामचन्द्र अधीर हो उठे । तब लक्ष्मण जी के बहुत कुछ समझाने पर वे शान्त हुए और ऋष्यमूक पर्वत की ओर चले । धीरे धीरे वे ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचे । उस पर्वत पर वाली के सताये सुग्रीव ने दूर ही से उन दोनों की चाल ढाल देख और इनका वाली का भेजा अदम्य शत्रु समझ, भयभीत हो, वायुनन्दन हनुमान् को, असली बात जानने के लिये शीघ्र उनके निकट भेजा ।

हनुमान् द्वारा राम और लक्ष्मण का सुग्रीव के पास जाना।

स्थिरबुद्धि वर-रूप-धारी हनुमान् ने धनुर्धारी राम और लक्ष्मण के पास जा, और प्रसङ्ग छल से उनका परिचय प्राप्त कर, और वहाँ उनके आने का सविस्तर कारण जान, प्रसन्न हो अपना परिचय दिया । फिर उनके आगमन से सुग्रीव का सौभाग्य समझ अपना असली रूप धारण किया और वे अपने विशाल कन्धों पर दोनों

भाइयों को विठा, मलय नामक शृङ्ग पर बैठे हुए सुग्रीव के पास उनको शीघ्र ले गये।

रामचन्द्र और सुग्रीव की मैत्री और प्रतिज्ञा।

तदनन्तर दोनों ने मन खोल कर आदि से अन्त तक अपना अपना वृत्तान्त एक दूसरे से कहा। महाबाहु राम ने प्रतिज्ञा की कि अकारणविरोधी एवं पापाचारी वाली को मार, निरपराधी सुग्रीव की वाली द्वारा छीनी हुई स्त्री रुमा को उसे वापिस दिला, मैं सुग्रीव को किष्किन्धा की राजगद्दी दिलाऊँगा। इसके बदले में सुग्रीव ने कहा—मैं दुर्धर्ष राक्षस द्वारा हरी हुई जानकी का, दुर्मति राक्षस का नाश करा, प्राणपण से उद्धार करने में सहायता दूँगा। दोनों ओर से उक्त प्रतिज्ञाएँ अग्नि को साक्षी कर के हुईं।

सीता के फेंके अलंकारादि को देखना और समतालों को बेधना।

इसके बाद महाभाग सुग्रीव ने, उन आभूषणों को रामचन्द्र को दिखाया—जो सीता ने उस पर्वत पर सुग्रीव के सामने पटके थे। श्रीरामचन्द्र ने तो उन सब को पहचान लिया किन्तु लक्ष्मण ने केवल दोनों नूपुरों ही को पहचाना। सीता के फेंके हुए आभूषणों को देख महानुभाव रामचन्द्र का शोकप्रवाह दूना हो गया। इस पर सुहृद्वर सुग्रीव ने शास्त्र-सङ्गत प्रबोध वाक्यों से उनको आश्वस्त कर, और और बातें छेड़ उनका ध्यान बँटा दिया। बातों ही बातों में श्रीरामचन्द्र को सुग्रीव ने वाली का अपरिमित भुजबल बतलाया। तब मित्र को विश्वास दिलाने और प्रसन्न करने के लिये महाबल रामचन्द्र ने पैर के अंगूठे स वाली के फेंक हुए और पास पड़े महिषरूपी

असुर के सूखे मस्तक को उठा दस योजन के फासले पर फेंका और एक ही बाण से सातों बड़े बड़े शालवृक्षों[1] को गिरा दिया।

श्रीरामचन्द्र की असीम क्षमता का परिचय पा कर, सुग्रीव को धीरज बँधा और अगले दिन वह श्रीरामचन्द्र को साथ ले किष्किन्धा नगरी के द्वार पर जा पहुँचा। वह धनुषबाणधारी श्रीरामचन्द्र को पेड़ों की छाया में छिपा, स्वयं उच्च स्वर से गरजा, जिससे उसकी गरज को बाली रण का निमंत्रण समझ बाहिर निकल आये। छोटे भाई का युद्ध के लिये आमंत्रण पा बाली क्रोध में भर तुरन्त बाहिर निकल आया और आ कर सुग्रीव से भिड़ गया। दोनों के रूप एकसे देख, और यह समझ कि कहीं भ्रमवश मित्र ही न मारा जाय श्रीरामचन्द्र ने बाण न छोड़ा। थोड़ी ही देर के युद्ध में बाली ने मार कर सुग्रीव को व्यथित कर डाला। तब तो सुग्रीव डर कर, ऋष्यमूक पर्वत पर भाग गया और किसी प्रकार अपने प्राण बचाये।

(बाली के साथ सुग्रीव का प्रथम बार लड़ना और हारना।)

लौट कर सुग्रीव ने जब श्रीरामचन्द्र जी को उलहना दिया, तब रामचन्द्र ने उससे बाण न चलाने का कारण बतलाया और कहा इस बार पहचानके लिये तुम गजपुष्पी लतिका की माला अपने गले में पहन कर जाओ। इसी निश्चय के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी को साथ ले सुग्रीव फिर

(सुग्रीव के साथ फिर युद्ध करने जाते हुए बाली का उसकी पत्नी द्वारा रोका जाना।)

१—मतान्तरे तालवृक्ष।

किष्किन्धा के द्वार पर जा बड़े ज़ोर से गरजा। उधर वाली की स्त्री तारा[1] अपने पुत्र अंगद से सुन चुकी थी कि भार्या के वियोग में घूमते हुए वनवासी रामचन्द्र ने सुग्रीव के साथ मैत्री की है और वाली के वध की प्रतिज्ञा की है। वाली की स्त्री ने इसी लिये वाली को जाने से रोका और जो वृत्तान्त उसने अंगद से सुना था सब वाली से कहा।

वाली को मारनेके लिये श्रीरामचन्द्र का बाण चलाना।

स्त्री की बातें सुन वाली हँसा और सुग्रीव के साथ द्वन्द्वयुद्ध में प्रवृत्त होने पर, धीमान् और शास्त्रज्ञ रामचन्द्र का विरुद्धाचरण अयौद्धिक और शास्त्रविरुद्ध बतला, उसने डरी हुई तारा को धीरज बँधाया और स्वयं तुरन्त वैर का बदला चुकाने को घर से निकला। दोनों में फिर घोर युद्ध होने लगा। कुछ देर बाद सुग्रीव को शिथिल होते देख पेड़ की आड़ में खड़े रामचन्द्र ने वाली के ऊपर अमोघ बाण चलाया।

रणभूमि में पतिव्रता तारा का आगमन।

सहसा विषम आघात से उत्पन्न मर्मान्तक पीड़ा से अधीर हो वाली को पृथिवी पर गिरा देख, रामचन्द्र प्रभृति सब लोग तुरन्त उसके निकट जा उपस्थित हुए। उस समय अकारण और छिप कर प्रहारकारी रामचन्द्र

१—तारा—कहा जाता है जिस समय रावण मन्दोदरी को लिये हुए लंका जा रहा था उस समय वाली ने उसको सुन्दरी देख रावण से छीनना चाहा। इस झपटाझपटी में मन्दोदरी के दो टुकड़े हो गये। यह सुन मय दानव तुरन्त वहाँ पहुँचा और शङ्कर की कृपा से अपनी कन्या के दोनों खण्डों को जीवित कर दिया। एक खण्ड रावण ले गया—दूसरा खण्ड तारा के नाम से वाली के पास रहा।

को वाली ने बहुतसी खरी खोटी बातें सुनायीं। इतने में वाली के घायल होने का समाचार सुन, अंगद तथा अन्य वानरियों को साथ ले और ज़ोर से रोती हुई तारा भी वहाँ पहुँची और अपने पति को मृतप्राय अवस्था में पृथिवी पर पड़ा देख, उसीके पास धूल में लोट कर विलाप करने लगी।

वालीकी प्रेत-क्रिया और सुग्रीव का राज्याभिषेक।

अन्तिम दशाग्रस्त वानरराज और शोकार्त्त तारा द्वारा निन्दित, सुपण्डित रामचन्द्र ने, शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा, कदाचारी वन्य शाखामृगके वध को पापकर्म न बतला—उनका[1] भ्रम दूर करते हुए, विपण सुग्रीव को धीरज

१—संस्कृत आलङ्कारिकों ने प्रायः एकवाक्य * हो धीरोदात्त रामचन्द्र के, गुप्त वाण से मारे गये वाली के, काम को उनके महत् चरित्र के अनुपयुक्त बतलाया है।

एक किसी महाकवि ने यज्ञाश्वहारी लव के मुख से रामचन्द्र के वालिवधादि व्यापार की ओर आक्षेप कराते हुए कहा है:—

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु, किं वर्ण्यते,
सुन्दस्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीण्यकुतोभयान्यपि पदान्यासन् खरायोधने,
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः॥

---

* काव्यों में चार प्रकार के नायक हुआ करते हैं यथा:—

(१) धीरोदात्त—जिसमें सब गुणों का उत्कर्ष लक्षित हो। जैसे रामचन्द्र युधिष्ठिरादि।

(२) धीरोद्धत—जिसकी उद्धतता और उग्रता में सदा अनुरक्ति दीख पड़े—जैसे रावण, दुर्योधन, भीमसेनादि।

(३) धीरप्रशान्त—जिसमें सब गुणों का सामञ्जस्य हो—जैसे "मालती-माधव" का माधव।

(४) धीरललित—जो सदा निश्चिन्त हो नाचने गाने में अपना समय लगाया करे जैसे "रत्नावली" के वत्सराज।

बँधाया और वाली के सामने तारा और अंगद के साथ सद्व्यवहार करने की प्रतिज्ञा की। फिर वाली को मरा हुआ देख, श्रीरामचन्द्र ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को वाली का यथाविधि और्ध्वदेहिक कृत्य करवाने के लिये नियुक्त किया। विषण्ण सुग्रीव, शोक-विह्वल अंगद, और विलाप करती हुई तारा को साथ ले लक्ष्मण जी, वाली के शव को एक अच्छी ठठरी पर रखवा नदी के तीर पर उठवा ले गये और वहाँ उसका दाहसंस्कार करवाया तदनन्तर रामचन्द्र के आदेशानुसार शुभ मुहूर्त्त में लक्ष्मण ने किष्किन्धा राज्य की राजगद्दी पर सुग्रीव को बिठाया।

सोलहवाँ अध्याय।

वर्षा बिताने के लिये रामचन्द्र का माल्यवान् पर्वत पर निवास।

सीता की खोज के लिये वर्षाकाल को अनुपयुक्त समझ सुग्रीव ने इस काम में हाथ न डाल और श्रीरामचन्द्र जी के वर्षा भर वहाँ रहने के लिये किष्किन्धा ही में प्रबन्ध भी किया। किन्तु चौदह वर्ष भर वन में रहने की प्रतिज्ञा किये हुए राम ने बस्ती में जाना अनुचित

१—कहा जाता है कि रामचन्द्र जी द्वारा वाली के गुप्त रूप से मारे जाने पर उन्होंने अंगद को वर दिया था कि द्वापर युग के कृष्णावतार में वे व्याधरूपी कुमार अंगद के बाण से अपनी मानवी लीला संवरण करेंगे।

समझ वर्षा भर माल्यवान् पर्वत की एक गुफा में रहना पसन्द किया। सुग्रीव को विवश हो उनका कहना मानना पड़ा और स्वयं स्वजनों सहित सुग्रीव बस्ती के भीतर जा कर रहने लगे।

वानरसेना एकत्र करने के लिये सुग्रीव की आज्ञा।

क्रमशः जब वर्षाकाल निकल गया तब रामचन्द्र के काम को भूले हुए वानरराज सुग्रीव को सशङ्कित चित्त सचिव हनुमान् ने उनको उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराया तब तो सुग्रीव ने हनुमान् को आज्ञा दी कि पन्द्रह दिन के भीतर सब वानरों को किष्किन्धा में उपस्थित होने की घोषणा करा दो। सेना एकत्र करने का भार हनुमान् को सौंप सुग्रीव जब पुनः सुखभोग में उन्मत्त हो गये, तब उसके अन्यान्य मंत्रियों ने, सीता की खोज के काम में तुरन्त

१-(मतान्तरे) रामचन्द्र किष्किन्धा के पास प्रश्रवण नामक पर्वत पर एक वर्ष तक रहे थे।

अहं समीपे शिखरे पर्वतस्य सहानुजः।
वत्स्यामि वर्षदिवसान् ततस्त्वं यत्नवान् भव॥
किञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा सीतायाः परिमार्गणे।
ततो रामो जगामाशु लक्ष्मणेन समन्वितः॥
प्रश्रवेण गिरेरूर्ध्वं शिखरं भूरि विस्तरम्॥

गोदावरी नदी के तट पर प्रश्रवण पर्वत है। इसकी चोटी पर जटायु रहा करता था।

२-किष्किन्धा की दूसरी ओर माल्यवान् पर्वत पर रामचन्द्र ने वर्षाकाल बिताया था। ईशानकोण की एक समुन्नत गुफा में वे रहे थे। उसके नीचे जल का सोता बहता था।

लक्ष्मण के कोप से भीत सुग्रीव का रामचन्द्र के पास आना ।

प्रवृत्त होने का उनसे बारंबार अनुरोध किया । अन्त में कर्त्तव्य कर्म में उदासीन देख, रामचन्द्र के भेजे लक्ष्मण के तिरस्कारयुक्त वाक्यों से सतर्क हो, हनुमान् आदि सचिवों के सहित सुग्रीव तुरन्त रामचन्द्र जी के सामने हाथ जोड़ कर जा खड़े हुए ।

सीताकी खोज में सुग्रीव का चारों ओर वानरों को भेजना ।

इतने में वानरों के यूथ के यूथ आ आ कर माल्यवान् पर्वत पर एकत्र होने लगे । सुग्रीव प्रत्येक यूथ के बल पराक्रम का वर्णन श्रीरामचन्द्र जी को सुनाते थे । सुग्रीव वाली के भय से पृथिवीमण्डल की परिक्रमा कर चुके थे । इसीसे उनको भूमण्डल का रत्ती रत्ती हाल अवगत था। उसी ज्ञान के आधार पर वे वानरों की टोलियों को प्रत्येक दिशा में भेजने के पूर्व, उस दिशा में वानरों को जहाँ जहाँ सीता की खोज के लिये जाना चाहिये बतला दिया करते थे । सुग्रीव ने एक लाख वानरों क साथ विनत नामक सेनापति को पूर्व दिशा में भेजा । महावीर हनुमान्, जाम्बवान्, नील, अङ्गद आदि को बहुतसी सेना दे, दक्षिण की ओर; अपने ससुर और सेनापति सुषेण को दो लाख वानरों सहित पश्चिम की ओर, और एक लाख सेना के साथ सेनापति शतवलि को उत्तर दिशा की ओर भेजा । साथ ही इन सब सेनापतियों को यह भी भली भाँति समझा दिया कि एक मासके भीतर हीसीताजी कापता लगा कर लौट आना— जो न आवेगा उसे प्राणदण्ड दिया जायगा ।

सेनापतियों ने निर्दिष्ट दिशाओं में सीता को ढूँढ़ने के लिये जाना आरम्भ किया । जब सुग्रीव के मुख से रामचन्द्र ने हनुमान् की कार्यसाधनसम्बन्धी विशेष क्षमता की प्रशंसा सुनी, तब प्रसन्न हो उन्होंने सीतादेवी की चिन्हानी के लिये अपने नाम की अंगूठी हनुमान् को दी । उस अंगूठी को सावधानी से अपने पास रख, बड़ी भक्ति से प्रणाम कर और प्रसन्न होते हुए अंगद आदि को साथ ले, तुरन्त दक्षिण की ओर प्रस्थानित हुए ।

रामचन्द्र द्वारा हनुमान् को चिन्हानी के लिये अंगूठी का दिया जाना ।

धीरे धीरे सुग्रीव द्वारा निर्दिष्ट, स्थानों को ढूँढ़ कर, और सीता का पता न पा कर पश्चिम पूर्व और उत्तर में गये हुए सेनापति ससैन्य लौट आये । किन्तु दक्षिण में गये हुए वानरों के न आने से सुग्रीवादि चिन्तित हुए । अन्त में यह समझ कि रावण सीता को दक्षिण ही की ओर ले गया है, इससे हनुमानादिकों को सीता का पता लगाने में विलम्ब हुआ है—राम लक्ष्मण और सुग्रीव को कुछ कुछ धीरज बँधा और वे बड़ी उत्सुकता से उनके लौट कर आने की प्रतीक्षा करने लगे ।

पूर्व, उत्तर, और पश्चिम में गये हुए वानरों का लौट कर आना ।

सत्रहवाँ अध्याय ।

उधर दक्षिण की ओर गये हुए वानरगण, अनेक नदी, पर्वत और गुफाओं को मँझाते हुए और अनेक विस्मयकारी पदार्थों को देखते हुए, समुद्र तीर के समीप स्थित विन्ध्यपर्वत पर पहुँचे । वहाँ जा वे सोचने लगे

विफलमनोरथ हनुमानादि का निराहार रह कर प्राण गँवाने का यत्न ।

कि वानरराज ने जो अवधि लौटने की बतलायी थी वह तो बीत चुकी और काम कुछ भी नहीं हुआ—यदि लौट कर चलते हैं तो वानरराज बिना प्राण लिये न छोड़ेंगे। अब करना क्या चाहिये। इसी सोच विचार में पड़ वे समुद्र तट के समीप बैठ गये। अन्त में परस्पर बहुत कुछ वादविवाद के बाद यह स्थिर हुआ कि वानरराज के हाथ से मारे जाने की अपेक्षा, यहीं पर स्वयं प्राण दे देना अच्छा है। इस निश्चय के अनुसार वे निराहार रह कर प्राण देने को उद्यत हुए और समुद्र के तट पर बैठ कर परस्पर रामचन्द्र के पूर्ववृत्तान्त को कहने सुनने लगे। प्रसङ्गक्रम से अंगद ने जटायु के मरण का वृत्तान्त भी कहा।

अंगद द्वारा जटायु की मृत्यु का वृत्तान्त वर्णन।

वानरों की किलकारियों को सुन, उस पहाड़ के शिखर पर रहने वाले पक्षहीन एक महाकाय पक्षी की नींद टूटी और उन वानरों को प्राण गँवाते देख और बहुत दिनों के लिये अपने आहार की सामग्री को अपने सामने देख, वह पक्षी धीरे धीरे पर्वत के नीचे उतरने लगा। नीचे उतरते समय उसने अंगद के मुख से अपने भाई जटायु का मरण-वृत्तान्त सुना। उसे सुन उसे विस्तार पूर्वक कहने का उसने अंगद से विशेष अनुरोध किया। तब उस वृद्ध पक्षी का कौतूहल दूर करने के लिये महावीर अंगद ने उसे शिखर से नीचे उतार, महाराज दशरथ-नन्दन रामचन्द्र की सीता नाम्नी भार्या के हरे जाने के

समय दुर्वृत्त रावण द्वारा रक्षक जटायु के मारे जाने का वृत्तान्त कहा और कहा कि हमलोग सीता को ढूँढ़ते ढूँढ़ते हताश हो अब प्राण देने के लिये यहाँ एकत्र हुए हैं।

रामचरित्र के सुनने से सम्पाति के नये पंखों का निकलना।

रामचन्द्र का वृत्तान्त सुनते ही सुनते उस पक्षी के, नये पंख निकल आये। यह अद्भुत व्यापार देख वानरों ने उससे इसका कारण पूँछा। पूँछने पर उस पक्षी ने पहले तो अपना नाम सम्पाति[1] वतलाया। पीछे जटायु को अपना बड़ा भाई वतला कर उसकी मृत्यु का हाल सुन शोक प्रकाश किया साथ ही कहा कि एक वार हम और वह सूर्य्यमण्डल के समीप उड़ कर गये। जब सूर्य के समीप पहुँचे तब गर्मी से बचाने के लिये हमने (सम्पाति ने) अपने छोटे भाई को अपने परों के नीचे दबाया। किन्तु हमारे दोनों पर जल गये और हम विन्ध्यगिरि पर गिरे। जहाँ हम गिरे थे उससे कुछ ही दूर पर, हमारे परिचित निशाकर नाम के एक ऋषि रहते थे। उन्होंने हमारी दशा देख हमें यह वर दिया कि जिस समय हम सीता की खोज में आये रामदूत वानरों के मुख से रामचरित सुनेंगे—उस समय हमारे नये पंख निकल आवेंगे। वह समय आज उपस्थित हुआ है। यह सुन सब वानर बड़े विस्मित हुए। फिर सम्पाति ने कहा कि गीध होने के

१—सम्पाति गरुड़ का ज्येष्ठ पुत्र था। (मतान्तरे) गरुड़ के भाई अरुण के औरस और श्येनी के गर्भ से सम्पाति और जटायु का जन्म हुआ था।

कारण हमारी दृष्टि बहुदूरव्यापिनी है । हमें दीख रहा है कि यहाँ से सौ योजन के अन्तर पर समुद्र पार लंकापुरी में सीता जीती जागती बैठी हैं। तुममें से जो वहाँ जा सकेगा, उसीको उनका पता लग जायगा ।

सम्पाति द्वारा अगद प्रभृति को सीता का पता अवगत होना ।

सम्पाति से सीतादेवी का पता पा कर, वानरों ने मरने का संकल्प छोड़ दिया और प्रसन्न हो अब वे समुद्र के दूसरे तट पर पहुँचने के लिये परामर्श करने लगे। समुद्र के पार जाने का, कूद कर पार होने के सिवाय, अन्य उपाय न देख, वानर अपनी अपनी कूदने की सामर्थ्य बतलाने लगे। किसीने अपने मुँह से, बीस और किसीने पचास योजन कूदने की अपनी शक्ति बतलायी। बूढ़े जाम्बवान् ने कहा यद्यपि मैं अब बहुत बूढ़ा हो गया हूँ तो भी मैं नब्बे योजन कूद कर जा सकता हूँ। अंगद ने सौ योजन जाने की अपनी शक्ति बतला कर कहा कि उस पार से लौट कर आने में मुझे सन्देह है।

समुद्र पार जाने के लिये वानरों का अपनी अपनी कूदने की क्षमता बतलाना ।

सबके अन्त में सर्वविषयाभिज्ञ वृद्ध जाम्बवान् ने, एकान्त में चुपचाप बैठे और मुनिशापवश अपने पराक्रम को भूले हुए, हनुमान् की ओर सङ्केत कर उनके जन्म और पराक्रम का वृत्तान्त अङ्गदादि को सुनाया। फिर कहा हनुमान्, वायुवेग से—सौ योजन क्या—कई सहस्र योजन बात की बात में जा सकते हैं। फिर उन्होंने हनुमान् जी से राम के काम को पूरा कर वानरराज सुग्रीव को प्रसन्न करने का अनुरोध किया। बहुदर्शी,

जाम्बवान् के कहने से हनुमान् का समुद्र के पार जाने के लिये राज़ी होना।

विचक्षण जाम्बवान् के मुख से अपने पराक्रम को सुन और उसे स्मरण कर, पवननन्दन हनुमान्, समुद्र के उस पार जा कर, जानकी का पता लगाने को झट उद्यत हो गये। उस समय मृतप्राय वानरमण्डली में हर्षध्वनि हुई और उसमें नये जीवन का सञ्चार हुआ। तदनन्तर कामरूपी महाबली हनुमान् ने समुद्रतीरवर्ती महेन्द्र पर्वत पर चढ़, और समस्त वानरमण्डली का अभिवादन ग्रहण कर, सौ योजन विस्तीर्ण समुद्र को फलाँगने के योग्य अपना शरीर कर लिया।

अठारहवाँ अध्याय।

आकाश में जाते हुए हनुमान् के विश्रामार्थ समुद्र द्वारा मैनाक पर्वत को प्रेरणा।

जिस समय पिता पवनदेव का स्मरण कर, महाकाय हनुमान् महेन्द्र पर्वत पर चढ़ समुद्र को लाँघने के लिये आकाशमार्ग से चले, उस समय समुद्रवासी जलचर, उनके प्रचण्ड वेग को न सह कर मारे डर के इधर उधर भागने लगे। तब रामचन्द्र के कार्य में साहाय्य देने के लिये उत्सुक समुद्र ने, पवनपुत्र के असम-साहसिक उद्यम और अविश्रान्त गमन को देख और प्रसन्न हो, अपने जल के भीतर स्थित, और इन्द्र के भय से अपने शरण में आये हुए, सुवर्ण पक्ष वाले, मैनाक नामक पर्वत को, क्षणमात्र हनुमान् को विश्राम देने के लिये जल से बाहिर निकलने की आज्ञा दी।

तब मैनाक सहसा जल से निकल, जाते हुए हनुमान्

मैनाक का परिचय पा कर हनुमान् द्वारा उसका स्पर्श किया जाना।

के सामने जा कहने लगा कि किसी समय पर्वतों के पंख थे और वे इधर उधर उड़ और बस्तियों के ऊपर गिर कर अनेक उपद्रव और अनर्थ किया करते थे। यह देख इन्द्र ने वज्र से उनके पक्ष काट डाले। मैं मारे डर के भागा और आपके पिता पवनदेव की सहायता से, समुद्र के शरण हो उसके जल में छिप गया। आज मुझे आपके पिता के उपकार से उऋण होने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। अतः आप कुछ ही क्षण के लिये मार्ग की थकावट दूर कर मुझे अनुगृहीत कीजिये। मैनाक के इस आग्रहपूर्ण अनुरोध की रक्षा के लिये हनुमान् ने प्रसन्न हो और बिना विलम्ब किये समुद्र पार जाने की अपनी प्रतिज्ञा स्मरण कर, मैनाक पर्वत को केवल छू दिया और बड़े वेग से वे लंका की ओर चल दिये।

हनुमान द्वारा सुरसा नाम्नी नागमाता का छला जाना।

समुद्र को लाँघते हुए हनुमान् की सामर्थ्य और बुद्धि की परीक्षा लेने के लिये, देवताओं द्वारा भेजी हुई नागमाता सुरसा, अकस्मात् वीर वानर के सामने खड़ी हो गयी और उन्हें खाने के लिये अपना मुख फैलाया। जब उसने देखा कि हनुमान् जी ने अपने शरीर को उसके मुख से बड़ा कर लिया है तब उसने भी अपना मुख बढ़ाया। इस प्रकार हनुमान् अपना शरीर बढ़ाने लगे और सुरसा अपना मुख बढ़ाने लगी। जब सुरसा

१—कोई ग्रन्थकार सुरसा का मिलना, मैनाक के पहले ही बतलाते हैं।

ने अपना मुख बहुत बड़ा किया, तब हनुमान् बहुत छोटे बन उसके मुख से हो कर उसके पेट में घुस गये और तुरन्त निकल आये। इस प्रकार सुरसा की बात रख और उसे सन्तुष्ट कर वीर हनुमान् आगे बढ़े।

हनुमान द्वारा सिंहिका राक्षसी का वध।

इसके बाद कुछ दूर आगे जाने पर हनुमान् को ऐसा जान पड़ा कि उन्हें कोई समुद्र के जल की ओर खींच रहा है। ऐसा जान पड़ते ही उनको सुग्रीव की कही बात स्मरण हो आयी और उन्होंने समझ लिया कि यह करतूत समुद्र में रहने वाली सिंहिका नाम्नी राक्षसी की है। वह राक्षसी आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की छाया पकड़ कर उनको खींचती और खा जाया करती थी। यही चाल उसने हनुमान् जी के साथ चली। पर इस बार उसने रस्सी के धोखे साँप को पकड़ा। हनुमान् ने उसके छल को पहचान तुरन्त उसे यमपुर भेज दिया। हनुमान् जी द्वारा सिंहिका का वध देख देवता गन्धर्व सभी प्रसन्न हुए।

हनुमान जी का समुद्र पार पहुँचना।

इस प्रकार अनेक विघ्नों को नाश कर हनुमान् समुद्र के पार पहुँच गये। पर्वतशृङ्ग पर लंका को देख और

१—सिंहिका—राहु की माता, कश्यप-पत्नी दिति के गर्भ से उत्पन्न और हिरण्यकशिपु की बहिन थी। किसी किसी ग्रन्थ में लिखा है कि हनुमान् ने समुद्र में कूद कर, लातों लातों मार कर सिंहिका के प्राण लिये थे।

तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीम्।
पपात सलिले तूर्णं पद्भ्यामेवाहनद्रुषा॥

उसे रावण की राजधानी निश्चित कर वे बहुत प्रसन्न हुए। लंकावासी उनका कहीं आना न जान लें—यह विचार उन्होंने अति छोटा रूप धारण किया और लम्ब नामक पर्वतशिखर पर वे जा उतरे ।

उन्नीसवाँ अध्याय ।

हनुमान् द्वारा पराजित लङ्कापुरी की अधिष्ठात्री देवी का पुरी-त्याग ।

पर्वतशृङ्ग से लंका की समृद्धि और उसके भीमकाय अस्त्रधारी राक्षस वीरों द्वारा उसकी रक्षा होते देख; विस्मित हनुमान्, चुपचाप छिप कर सीता का पता लगाने का विचार पक्का कर, रक्षकों की आँख से बचने के लिये सन्ध्या होने पर बिलार जितना बड़ा रूप धर पुरी में घुसे । किन्तु भयंकररूपधारिणी लंकापुरी की अधिष्ठात्री देवी ने आ कर हनुमान् के काममें बाधा डाली और वह उनके सामने आ कर खड़ी हो गयी । पहले तो हनुमान् ने मीठी बातों से काम निकालना चाहा।—किन्तु दुष्ट प्रकृति के जीव मीठी बातों से भला क्यों मानने लगे । अतः हनुमान् जी ने लङ्कापुरी की अधिष्ठात्री देवी के बाम हाथ से एक मुक्का मार कर उसे पृथिवी पर गिरा दिया। वानर द्वारा इस प्रकार पराभूत होने पर लंका की अधिष्ठात्री देवी को ब्रह्मा की कही वह बात स्मरण हो आयी, जो उन्होंने उससे एक समय कही थी । वह यह थी कि तू लंकापुरी का और लंका में रहने वाले निशाचरों का नाशकाल आया हुआ तब समझ लेना, जब तू वानर द्वारा

पराभूत हो।[1] उसी समय आया समझ पुरी की अधिष्ठात्री देवी, लंकापुरी को छोड़ और हनुमान् को आशीर्वाद दे चलदी।

हनुमान् का लंका में घूमना और सोये हुए रावण को देखना।

इसके बाद हनुमान् जी पुरी में घुस अपने काम में लगे। लंकापुरी में घूमते फिरते उन्होंने विविध रत्नराजी-खचित प्रासादश्रेणी, राग का वर्णनातीत सौन्दर्य, तथा घोर राक्षसों द्वारा समस्त नगरी का सुनियमित रक्षण देख, और विस्मित हो मन ही मन, रावण के अतुल ऐश्वर्य और दोर्दण्डप्रताप को विचारा। फिर उनको सीता का पता लगाने की चिन्ता ने आ दबाया। समुद्र के लाँघने का सारा परिश्रम भूल, हनुमान् ने सारी रात सीता जी को खोजने में व्यतीत कर दी। सीता जी को खोजन के समय हनुमान् ने विविधाकृति राक्षसीपूर्ण अनेक घर, अपूर्व कौशल निर्मित पुष्पक विमान, विचित्र वेशधारिणी मदोन्मत्त, सुन्दरी स्त्रियों से भरी हुई नाट्य-शाला, और उज्ज्वल-रत्न-निर्म्मित दीपावली से शोभित और सुसज्जित शयनागार में, अष्टालङ्कारभूपित, असाधारण रूपसम्पन्न-निद्रित रमणियों से परिवृत मणिमय पर्यङ्क पर सोते हुए महातेजाः रावण को देखा।

सीता को न पाने पर हनुमान् का दुःखी होना।

अलौकिक रूपवती महिषी मन्दोदरी को सीता समझ, वानर-स्वभाव-सुलभ हनुमान् आनन्दित हुए। किन्तु पीछे

१—(मतान्तरे) शङ्करादिष्टा लंकाधिष्ठात्री देवी चामुण्डादेवी, वानर को लंका में देखते ही चुपचाप भाग गयी थी।

ध्यानपूर्वक देखने पर और मन ही मन तर्क वितर्क कर, उन्हें अपनी भूल समझ पड़ी। लंकापुरी की सारी बस्ती को तिल तिल ढूँढ़ डालने पर भी जब सीता का कुछ भी पता न लगा; तब हनुमान् हताश हो, अपना सारा श्रम विफल जाते देख कुचिन्ताओं को मन में स्थान देने लगे।

हनुमान द्वारा सीता का अशोकवन में दर्शन।

रात बीतने पर, जब प्रभात हुआ तब बस्ती से कुछ दूर हनुमान् को एक अशोक-तरु-शोभित, एक मनोहर उपवन दिखलायी पड़ा। उसे देखते ही उनके शरीर में एक प्रकार की स्फूर्ति उत्पन्न हुई और वे एक लम्बे शीशम के पेड़ पर चढ़े। उस पर चढ़ उन्होंने दूर तक ध्यानपूर्वक देखा। उस उपवन में उनको विचित्र खंभों के एक दालान की सीढ़ियों के पास, विकटाकार राक्षसियों से घिरी हुई, मेघ से ढके हुए चन्द्रमा की तरह मलिन, दुःखी चित्त और एक साड़ी पहने बैठी हुई एक स्त्री देख पड़ी।

हनुमान् के सामने रावण द्वारा सीता के प्रति बुरा व्यवहार।

हनुमान् ने उसे देखते ही जान लिया कि सीता यही है। अब तो वे अपना सारा परिश्रम सफल समझ, बहुत प्रसन्न हुए। इतने ही में निद्रालस्य-त्यागी स्त्रियों से घिरा हुआ दुर्वृत्त रावण, सहसा वहाँ जा पहुँचा और सीता को अपनी मुट्ठी में करने के लिये अनेक प्रकार के लोभ दिखाने लगा। अनेक अनुनय विनय, स्तुति और विनती का सीता पर कुछ भी प्रभाव न पड़ते देख, रावण गालियाँ देता हुआ कुपिता, और रोती हुई सीता को मार डालने के लिये उद्यत हुआ। किन्तु मन्दोदरी ने बीच

में पड़, रावण को रोका। तब दो मास की अवधि और दे, रावण स्त्रियों सहित चला गया।

राक्षसियों द्वारा सीता का सताया जाना और त्रिजटा का स्वप्न।

कुपित रावण के वहाँ से चले जाने पर, विकटाकृत राक्षसियाँ रोती हुई सीता के चारों ओर बैठ गयीं। उनमें से कोई तो अनेक प्रकार से सीधी तरह सीता को समझातीं और कोई कोई राम के साथ सीता का पुनर्मिलन असम्भव बतला और डरा रावण का कहना मानने के लिये अनुरोध करने लगीं। इतने में सोती हुई त्रिजटा की नींद टूटी। नींद खुलते ही उसने वह स्वप्न कह सुनाया जो उसने रात में देखा था। उस स्वप्न का फल रामचन्द्र का विजय और राक्षसों का समूल नाश था। उसे सुन भयार्ता राक्षसियाँ त्रिजटा के कथनानुसार सीता को सताना छोड़, उनके शरणापन्न हुई और उनसे अभय दान माँगने लगीं। दयार्द्रहृदया सीता ने भी उसी क्षण उनको अभय कर दिया।

बीसवाँ अध्याय।

हनुमान् का सीता से बात चीत करने के लिये उपाय सोचना।

इसके बाद सीता वहाँ से उठ उस वृक्ष के नीचे आ बैठीं जिसके ऊपर हनुमान् जी छिपे बैठे थे। वहाँ बैठ वे रामचन्द्र जी के विरह वियोग में अधीर हो विलाप करके रोने लगीं। हनुमान् जी तो सीता से एकान्त में बात चीत करना चाहते ही थे—सो यह सुअवसर हाथ आया देख, वे अब यह सोचने लगे कि किस रीति से सीता से बातचीत करें। अनेक तर्क वितर्क के बाद बुद्धिमान् पवन-

नन्दन उस वृक्ष की फुनगी से उतर उसकी नीचे की डाली पर आ बैठे और इतने ऊँचे स्वर से कि जिसे सीता जी सुन सकें—रामचन्द्र के जन्म, विवाह, वनवास, भार्याहरण, सुग्रीवमिलन आदि घटनाओं को क्रमागत रीति से वर्णन करने लगे। अन्त में सीता की खोज में लङ्कापुरी में अपने आने का वृत्तान्त भी वर्णन किया।

हनुमान् और सीता की बात चीत।

वृक्ष की जड़ के पास बैठी हुई वैदेही ने, वैसे स्थान में प्रिय स्वामी का नाम और उनसे सम्बन्ध रखने वाले वृत्तान्त को सुन और विस्मित हो ऊपर की ओर दृष्टि उठा कर देखा। उस समय उन्हें एक डाली पर नयनों को प्रसन्न करनेवाला एक वानर दिखलायी पड़ा। उस वानर को वानररूपी कोई मायावी राक्षस समझ सीता डरीं। तब हनुमान् ने अपने को राम का दूत बतला और विश्वास उत्पन्न करने के लिये सीता जी को रामचन्द्र की दी हुई उनकी नामाङ्कित अंगूठी दी। शोकसन्तप्ता जानकी ने उस अंगूठी को बारंबार अपने हृदय से लगाया और अति प्रसन्न हो रामदूत हनुमान् को पुत्रवत् समझ अनेक आशीर्वाद दिये और उनसे उसी प्रकार मन खोल कर बातें कीं जैसे माता अपने दुःख सुख की बातें अपने गर्भ-जात पुत्र से करती हैं।

निदर्शन स्वरूप हनुमान् के हाथ म सीता द्वारा

अन्त में हनुमान् जी ने यह भी कहा कि यदि आप की आज्ञा हो तो मैं आपको अपनी पीठ पर चढ़ा अभी रामचन्द्र के पास पहुँचा दूँ। इसमें रामचन्द्र जी की वीरता

में धब्बा लगते समझ, सीता ने हनुमान् के इस प्रस्ताव को अग्राह्य बतलाया। तदनन्तर रामचन्द्र जी के अभिज्ञानार्थ, हनुमान् जी को अपने सिर में बँधी मणि उतार कर दी और एक ऐसी घटना उन्हें बतलायी, जिसे राम और सीता को छोड़ और कोई जानता ही न था। हनुमान् जी रावण के मुख से सुन चुके थे कि सीता जी को उसने दो मास की अवधि दी है। यदि इस बीच में उसका कहना उन्होंने न माना तो वे मार डाली जायँगी अतः हनुमान् जी ने सीता जी को विश्वास दिलाया कि दो मास के भीतर ही रामचन्द्र जी वहाँ जा कर उनका उद्धार करेंगे। इस प्रकार उनको धीरज बँधा हनुमान् जी वहाँ से बिदा हुए।

शिरोमणि का दिया जाना।

सीतादेवी की खोज क उद्योग में सफल होने के कारण प्रसन्नचित्त हनुमान् ने राक्षसराज के बल आदि का परिचय पाने की अभिलाषा से अपना शरीर बढ़ाया और अशोकवन के सुशोभित वृक्षों को उखाड़ना आरम्भ किया। कुछ ही क्षणों के भीतर वह सुरम्य अशोकवन ऊजड़ सा हो गया। उसे देख डरी हुई राक्षसियाँ रावण के पास गयीं और सारा वृत्तान्त उससे कहा। उसे सुन राक्षसराज बहुत क्षुब्ध हुआ और उस बन्दर को मार डालने के लिये अस्सी हज़ार अस्त्रधारी सैनिक भेजे। उनको आते देख महावीर हनुमान् गरजे और उन्हींके फेंके एक लोहे के मुग्दर को उठा उन्होंने देखते देखते

हनुमान् द्वारा अशोकवन का ध्वंस और राक्षसों का वध।

उन सबको मार डाला और बची बचायी उस उपवन की शोभा को नष्ट भ्रष्ट कर वे उस उपवन के तोरण द्वार पर बैठ रहे और उच्च स्वर से अपना परिचय देने लगे।

हनुमान् द्वारा जम्बुमाली और मंत्रियों के पुत्रों का मारा जाना।

उन सैनिकों के मारे जाने का तथा अशोकवन के ध्वंस होने का दुस्संवाद सुन रावण बहुत नाराज़ हुआ, और सेनापति प्रहस्त-पुत्र महाबल जम्बुमाली को असंख्य सेना सहित, हनुमान् को मार डालने के लिये भेजा। महावीर जम्बुमाली ने कुछ देर तक तो बड़ी तेज़ी के साथ युद्ध किया अन्त में सेना सहित वह भी मारा गया। तब रावण ने अपने मंत्रियों के पुत्रों को एक बड़ी सेना दे भेजा। हनुमान् ने उनको भी यमपुर भेज दिया और सिंहनाद करते हुए वे फिर तो रणद्वार पर जा बैठे।

अक्षयकुमार का हनुमान् के साथ युद्ध।

हनुमान् के साथ युद्ध करते हुए मंत्रिपुत्रों के मारे जाने का संवाद सुन रावण ने विरूपाक्ष प्रभृति पाँच सेनापतियों के साथ सेना भेजी। इन सबको भी कुछ ही क्षणों में हनुमान् ने मार डाला। यह सुन भीत और व्याकुलचित्त रावण ने, अपने तेजस्वी पुत्र अक्षयकुमार को, वानरवेशधारी शत्रु को पकड़ लाने के लिये भेजा। पिता की आज्ञा पा कर विचित्र रथ में बैठ और सेना साथ ले अक्ष वहाँ गया जहाँ हनुमान् जी बैठे थे।

हनुमान्‌द्वारा अक्षयकुमार का मारा जाना।

बालक अक्षयकुमार को अपरिमित बलशाली और समरकुशल देख, विस्मित महावीर हनुमान् ने अ[illegible] शरीर बढ़ाया और प्रचण्ड वेग से सारथी तथा [illegible]

सहित उसका रथ चूर्ण कर डाला। तब तो अक्षयकुमार आकाश में जा हनुमान् को बाणों से वेधने लगा। बाणों के लगने से क्रुद्ध हनुमान् जी ने तुरन्त आकाश में जा कुमार के दोनों पैर पकड़ और घुमा उसे भूमि पर दे पटका। अक्षयकुमार भी मारा गया। उसके साथी सैनिक जो मरने से बच गये थे रावण के पास इस दुःखदायी संवाद को ले गये। हनुमान् जी फिर उस तोरण द्वार पर बैठ और राक्षसों के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

इन्द्रजीत और हनुमान् का युद्ध।

अक्षयकुमार का मारा जाना सुन रावण बहुत घबड़ाया और दुःखी हुआ तथा अपने प्रिय पुत्र इन्द्रजीत को बुलाया। जब वह आया तब उससे अनेक मीठी मीठी बातें कह कर उसका उत्साह बढ़ाया और प्रबल पराक्रान्त शत्रु को जीतने की उसे आज्ञा दी। पिता की आज्ञा पा वीराग्रगण्य मेघनाद, शीघ्र महाकाय कपि के पास पहुँचा। पहले तो उसने बाणों के जाल में हनुमान् को फँसाना चाहा, किन्तु जब उसका यह प्रयत्न विफल हुआ। तब उसने ब्रह्मास्त्र द्वारा हनुमान् को गिराना चाहा। हनुमान् भी ब्रह्मास्त्र की अवहेला न कर स्वयं बँध गये, तब राक्षस उन्हें रस्सियों से जकड़ कर राक्षसराज के पास ले गये।

इक्कीसवाँ अध्याय।

हनुमान का रावण को

कहना न होगा कि ब्रह्मा जी के वरदान से हनुमान् उनके अस्त्र से अवध्य थे, तिस पर भी, वे रावण को देखने

देखने के लिये स्वयं बँध गये । यह देख राक्षसों के हर्ष की सीमा न रही । वे हनुमान् जी को रावण के पास ले गये । निर्भीतचित्त हनुमान् ने, मंत्रियों से घिरे हुए दिनकर के समान तेजस्वी, रावण के सामने अपने लङ्का आने का सत्य सत्य अभिप्राय प्रकट कर दिया । उन्होंने कहा, हम सुग्रीव की आज्ञा से, रामचन्द्र के दूत बन कर, सीता का पता लगाने आये हैं । यह कह हनुमान् ने रावण का तिरस्कार करते हुए और भी अनेक बातें कहीं और साथ ही यह भी कहा कि कालस्वरूपिणी सीता को तुम तुरन्त लौटा दो ।

हनुमान् की पूँछ का जलायाजाना।

इस धृष्टता के आचरण से कोपान्वित रावण ने हनुमान् को मार डालने की आज्ञा दी, किन्तु उसके धर्मपरायण छोटे भाई विभीषण ने, शास्त्रसंगत प्रमाणानुसार, कहा कि दूत अवध्य है, और यह कह राक्षसराज से कहा कि दूत को ऐसा अश्रुतपूर्व दण्ड न दो । सुबुद्धि विभीषण के परामर्श को सुन रावण ने हनुमान् को जान से मारने की आज्ञा रद्द कर दी और दूत-विगर्हित कर्म के लिये दण्डस्वरूप, पूँछ में आग लगा कर उनको नगर भर में घुमाने का नौकरों को आदेश दिया । यह आज्ञा पाते ही राक्षसों ने हनुमान् जी की लम्बी पूँछ में कपड़े लपेट और उसे अच्छी तरह तेल में डुबो कर और तर कर, उसमें आग लगा दी ।

हनुमान की

दुर्मति रावण के दण्डविधान की उपेक्षा कर, पवन-

नन्दन ने अपने पर्वत के सदृश शरीर को छोटा कर लिया और इस प्रकार बन्धनों से मुक्त हो, पूँछ की आग से लंकापुरी को दग्ध करने का उन्होंने संकल्प किया और कूद कूद कर वे ऊँची अटारियों पर चढ़ने लगे। अग्निदेव के वर और जानकी जी के आशीर्वाद से हनुमान् के शरीर में तो आँच की रेख तक न लगी, पर वे घूम फिर कर लंका को भस्म करने लगे। भयत्रस्त राक्षसियों और विपद्ग्रस्त निशाचरों के आर्त्तनाद से आकाश परिपूर्ण हो गया।

पूँछ मे लंका मे आग लगाया जाना।

इस प्रकार लंकापुरी को उलट पुलट कर जला, प्रसन्न होते हुए हनुमान् ने समुद्र में पूँछ की आग बुझायी और एक बार फिर जानकी जी के दर्शन करने उनके पास गये। समुद्रलंघन, राक्षसों का वध और लङ्कादाहजनित श्रम दूर करने के लिये, एक दिन विश्राम करने को सीता-द्वारा कहे जाने पर भी विलम्ब से कार्य में बाधा पड़ने के भय से, श्रमसहिष्णु हनुमान्, नेत्रों में आँसू भर वहाँ से बिदा हुए। अनन्तर वे समुद्रतीरस्थ अरिष्ट नामक उच्च पर्वतशृङ्ग पर चढ़, सुबृहत् शरीरधारी हनुमान् पिता को स्मरण कर, और अपने शरीर के बोझ से उस पर्वत को नीचे दबा, आकाशमार्ग से समुद्र के इस पार आने को चल दिये।

जानकी से हनुमान का बिदा माँग कर लंका से लौटना।

जब हनुमान् जी समुद्र के उस पार पहुँचने को हुए तब वानर-स्वभाव-सुलभ किलकारियों से उन्होंने अपना आगमन अपने साथियों को जनाया और यथासमय महेन्द्रा-

हनुमान् का लौटना और सीता का वृत्तान्त कहना।

चल पर जा कूदे और सीता का वृत्तान्त संक्षेप में कोलाहलकारी वानरों को सुनाया। क्षण भर विश्राम कर अंगद प्रभृति वानरों से घिरे हुए हनुमान् ने जाम्बवान् के कहने से समुद्रलंघन से ले कर अपने लौटने तक का हाल क्रमशः कह सुनाया। आनन्द में मग्न वानरों ने हनुमान् को अनेक धन्यवाद दिये और उनको अपना प्राणदाता बतला उनका बड़ा सम्मान किया।

शुभ संवाद देने के लिये वानरों का किष्किन्धा गमन।

तदनन्तर अंगद के परामर्शानुसार इस शुभ संवाद को राम तक पहुँचाने और शीघ्र ससैन्य राम सहित लंका पर आक्रमण करने के अभिप्राय से राम को वहाँ ले आने के लिये, वानरमण्डली वहाँ से किष्किन्धा के लिये प्रस्थानित हुई।

वानरों द्वारा सुग्रीव के मधुवन का उजाड़ा जाना।

रास्ते में सुग्रीव के मामा दधिमुख द्वारा सुरक्षित, मनोहर मधुवन के निकट पहुँच मधुपानेच्छुक, वानरमण्डली कुमार अंगद की अनुमति से बलपूर्वक उस उपवन में घुस पड़ी और मधुपान करने लगी। आनन्द में मग्न और अपरिमित मधुपान करने के कारण उन्मत्त वानरों ने बहुत दिनों से सुरक्षित इस उपवन को उजाड़ डाला और जिन रखवालों ने उन्हें रोका, उनको इन वानरों ने मारा। यह सुन दधिमुख स्वयं उनके पास गया और उनको ऐसा करने से रोका—पर इस समय यहाँ उसकी सुनता कौन था। वानरमण्डली ने दिल्लगी कर उसको भी पकड़ कर मारा। तब किसी प्रकार वह वहाँ से अपने को छुड़ा भागा हुआ सुग्रीव के पास गया और अंगद

के उत्पाती वानरों के उपद्रव का सारा वृत्तान्त वानर-राज के सामने वर्णन किया ।

अंगदादि का किष्किन्धा में पहुँचना ।

निर्दिष्ट समय को अतिक्रम कर हनुमान् प्रमुख वानरों का लौटना और लौट कर मधुवन को नष्ट भ्रष्ट करना—सहज काम न था । इन घटनाओं पर दृष्टि डालते ही सुग्रीव ने जान लिया कि यह वानरमण्डली सीता का पता लगा कर लौटी है । इस बात को अपने मामा दधि-मुख को समझा कर, सुग्रीव ने उनको शान्त किया और उनको फिर मधुवन वापिस भेजा और उनसे कह दिया कि जा कर अंगदादि को तुरन्त हमारे पास भेज दो । दधिमुख ने समझा था कि कपिराज अपने उपवन के नष्ट होने का संवाद सुन क्रुद्ध होंगे—पर जब वे क्रुद्ध न हुए और प्रसन्न हुए, तब तो दधिमुख भी डर को छोड़ प्रसन्न होता हुआ उपवन में पहुँचा और अंगद हनुमान् आदि मुखियों को कपिराज की आज्ञा सुनायी ।

बाईसवाँ अध्याय ।

हनुमान्द्वारा रामचन्द्र जी को सीता का संवाद और सीता की दी हुई गिरो-मणि का दिया जाना ।

कुमार अंगद और हनुमान् प्रभृति कपियूथ, रामचन्द्र लक्ष्मण और सुग्रीव को सीता का पता बतलाने के अभिप्राय से, आनन्द में भर कोलाहल करते और दौड़ते हुए किष्किन्धा में जा पहुँचे । सेवकोचित यथाविहित अभिवादन कर, वाक्यकुशल हनुमान् ने, संक्षेप में जानकी का पता लगाने का हाल, शोकातुर दोनों भाइयों से कहा

और सीता जी की दी हुई चूड़ामणि राम जी के हाथ में दी । यह चूड़ामणि सीता जी को जनक ने दी थी—यह स्मरण कर, रामचन्द्र ने उसे बड़े आदर से अपने हृदय से लगाया और सीतान्वेषण का वृत्तान्त विशदरूप से कहने के लिये हनुमान् को आज्ञा दी ।

हनुमानद्वारा सीतान्वेषण सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त वर्णन ।

आज्ञा होते ही, प्रभु-सेवा-परायण हनुमान् ने सारा हाल कह सुनाया । जिस समय से वे सीता को ढूँढ़ने, किष्किन्धा से चले थे—और जिस समय तक वे लौट कर आवे—उस बीच का सारा हाल उन्होंने रामचन्द्र जी के सामने वर्णन किया । साथ ही वह कथा भी उन्होंने कही जो सीता जी ने रामचन्द्र जी से कहने के लिये उनसे कही थी और जिसे अब के पहले सीता और राम को छोड़ और कोई जानता ही न था । अन्त में सर्वजन-प्रशंसित पवनतनय ने कहा कि राक्षसी-पीड़िता मलिना जानकी का उद्धार करने में अब क्षण भर का भी विलम्ब न होना चाहिये और यह कह कर वे चुप हो गये । तब वानरराज सुग्रीव ने, समग्र कपियों को शीघ्र यात्रा के लिये तैयार हो जाने को आज्ञा दी ।

ससैन्य रामचन्द्र की युद्ध-यात्रा ।

विचक्षण संग्राम-कुशल हनुमान् के मुख से समग्र रावण की सेना का बलाबल अवगत होने पर और

१—किसी किसी का कहना है कि हनुमान् ने अकेले ही लंका की चौथियाई राक्षससेना मार डाली थी ।

दशाननबलौघस्य चतुर्थांशो मया हतः ।
दग्ध्वा लङ्कां पुरीं स्वर्णप्रासादो धर्षितो मया ॥

सुग्रीव के परामर्शानुसार, समुद्र पर से पुल बाँध कर पार जाने के अभिप्राय से, उसी दिन दोपहर को, शुभ मुहूर्त्त देख, और लाखों वानरों को साथ ले, राम चल दिये। मार्ग बतलाने का काम नील को सौंपा गया। सेना के अग्रभाग की रक्षा का काम महावीर गवय और गवाक्ष को, दक्षिण भाग की रक्षा का काम वानरश्रेष्ठ ऋषभ को, वामभाग की रक्षा का काम गन्धमादन को, और सेना के पिछले भाग की रक्षा का काम सुग्रीव को सौंपा गया। तदनन्तर राम और लक्ष्मण हनुमान् और अंगद की पीठ पर सवार हो समुद्रतट की ओर प्रस्थानित हुए।

वानरसेना का महेन्द्र पर्वत पर पहुँचना।

असंख्य वानरों की सेना से घिरे हुए श्रीरामचन्द्र, यत्नपूर्वक सेना की रक्षा करते हुए और उपद्रव से वस्तियों को बचा अनेक नद नदी पहाड़ वन मँझाते, समुद्र की ओर प्रस्थानित हुए। उनके साथ के वानर भी कूदते फाँदते, कसरत करते तथा अपनी चाल और बोझ से भूमि को कँपाते उनके साथ साथ चले। महातेजाः रामचन्द्र और सुग्रीव के कठोर शासन में बलशाली वानरसैन्य, अत्याचार न करने पायी। इस बहुसंख्यक सेना से दूर दूर तक पृथिवी वानरों से ढक गयी थी। क्रमशः चल कर यह सेना महेन्द्राचल पर जा पहुँची।

समुद्रतट पर रामचन्द्र की सेना की छावनी।

पर्वतशिखर से बहुजलजन्तुपूर्ण समुद्र को देख, रामचन्द्र पहाड़ के नीचे उतरे। दूसरे समुद्र की तरह अपनी अपार सेना को उचित रीति से ठहरा कर, शुभ

शत्रुओं से अपनी सेना को रक्षित रखने का समुचित प्रबन्ध उन्होंने किया । उन्होंने महावीर द्विविद और मयन्द को उनके दल सहित छावनी के चारों ओर घूम फिर कर पहरा देने का काम सौंपा । फिर उस दुस्तर सागर के पार होने का उपाय ढूँढ़ निकालने का काम उन्होंने कपिराज सुग्रीव को सौंप सीताविरहकातर रामचन्द्र, सूर्य के अस्त होने पर, सायंकालीन सन्ध्यावन्दन कर्म में लगे ।

तेईसवाँ अध्याय ।

हनुमान के लंका से लौट जाने पर राक्षस-सेनापतियों की बकबक।

वीरसेविता लंकापुरी को प्राय: भस्म कर, जिस समय महाबली हनुमान् वहाँ से चले आये उस समय विपक्ष रावण सभास्थ अमात्य एवं सेनापतियों को सम्बोधन कर, आगे के कार्यक्रम को निर्द्धारित करने में प्रवृत्त हुआ । सभास्थ सब खुशामदियों ने एकवाक्य हो रावण को अजेय बतला एक वानर की नगण्य उछल कूद के कारण चित्त को चंचल करना युक्तिविरुद्ध बतलाया । यही क्यों प्रत्येक सेनापति ने यहाँ तक डींगें हाँकी और कहा यदि आज्ञा हो तो मैं अभी जा कर राम लक्ष्मण सुग्रीव को मार आऊँ । रामचन्द्र को सामान्य आदमी, और सुग्रीव आदि को सामान्य बन्दर बतला, वे कहने लगे कि हमने उस बन्दर को सामान्य बन्दर समझा था—इसीसे उसे यहाँ इतने उपद्रव करने

का अवकाश मिला नहीं तो भला किसकी मजाल है, जो यहाँ पर भी मार सके। इसी प्रकार राक्षसराज के मंत्रिगण और सेनानी अपनी अपनी प्रशंसा कर, और अपने अन्नदाता प्रभु के मित्ररूपी शत्रु बन कर, उसे सब्ज बाग दिखलाने लगे।

किन्तु रावण के छोटे भाई धार्मिकप्रवर विभीषण ने, अपने बड़े भाई के चरण छू कर तथा विनीत भाव से, शास्त्रसंगत प्रमाण द्वारा निरपराध रामचन्द्र की भार्या का हरना युक्तिविरुद्ध बतलाया। फिर शत्रु की शक्ति और उसके बल को दिखलाते हुए शत्रु के दूत द्वारा समुद्र को लाँघना, अनेक राक्षस सैनिकों सहित अक्षकुमार का मारा जाना और अन्त में सुरक्षित लंकापुरी को जलाना आदि शत्रुपक्षीय कार्यों का वर्णन किया। फिर कहा कि ऐसे प्रबल शत्रु को सामान्य शत्रु बतलाना मूढ़ता का चिह्न है। विभीषण ने रावण से अनुरोध-पूर्वक सीता देवी को लौटा देने का प्रस्ताव भी किया; किन्तु जिस प्रकार मरणोन्मुख रोगी को पथ्य अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार रावण को भी छोटे भाई की हितकर बातें अच्छी न लगीं—किन्तु आगे क्या करना चाहिये—इसे वह निश्चित न कर सका। तब उसने सभा भङ्ग कर, मन बहलाने के लिये नृत्य और गान आरम्भ किये जाने की आज्ञा दी।

अगले दिन सब लोग सभामण्डप में इकट्ठे हुए। सीताहरण

का हाल सुन कुम्भकर्ण का विरक्त होना, किन्तु पीछे इस कार्य के साथ सहानुभूति प्रकट करना।

बहुत दिनों बाद सो कर उठा हुआ कुम्भकर्ण भी आज के अधिवेशन में उपस्थित था। उसने जब राक्षसराज अपने ज्येष्ठ भ्राता रावण द्वारा सीता का हरा जाना सुना, तब पहले तो इसने इस कार्य को अनुचित बतला ज्येष्ठ भ्राता के प्रति असन्तोष प्रकट किया किन्तु पीछे से अपने असीम बाहुबल से उसके विरुद्ध रामचन्द्र से लड़ कर उसको सहायता देने की प्रतिज्ञा की। जिस समय कुम्भकर्ण ने सीताहरण को अनुचित कार्य बतलाते हुए असन्तोष प्रकट किया था और राक्षसराज की बातों को काटा, उस समय अपने छोटे भाई को सन्तुष्ट करने के लिये अन्य उपाय न देख रावण क्रुद्ध हुआ। उस समय सभा में उपस्थित दरबारियों ने, जो खुशामदी थे, जनस्थान में राम द्वारा मारे गये चौदह हजार राक्षसों की बात उठा कर, रावण द्वारा सीता-हरणरूपी दण्ड का राम को दिया जाना, न्यायसंगत बतला, रावण के न्याय की बड़ी लम्बी चौड़ी प्रशंसा की।

सभा भर में सुबुद्धि और स्पष्टवक्ता विभीषण ने, हाथ जोड़ कर, सीता का हरण, लंका का दग्ध किया जाना, अक्षकुमार का वध आदि अमंगल घटनाओं का वर्णन करते हुए और भावी अनिष्ट के डर से, बारम्बार राक्षसराज से अनुरोध किया कि सीता को आप रामचन्द्र जी को लौटा दें और इस हरी भरी लंकापुरी को नष्ट भ्रष्ट किये जाने से बचावें। साथ ही साथ विभीषण ने सभास्थ

उन दरबारियों की बात का खण्डन किया जिन्होंने रामचन्द्र को, निरपराध खरदूषण सहित चौदह हज़ार जनस्थानवासी राक्षसों का वध करने के लिये दोषी ठहराया था। विभीषण ने रामचन्द्र को बिल्कुल निर्दोष बतला कर रामचन्द्र के अमानुषिक वीरत्व के अनेक दृष्टान्त दिये और कहा कि ऐसे पुरुष को सामान्य पुरुष कहना उसके प्रति अवज्ञा है और नितान्त अपरिणामदर्शिता है। अन्त में विभीषण ने रावण से रामचन्द्र को सीता लौटा देने का, बारंबार अनुरोध किया।

विभीषण का सीता लौटाने के लिये रावण से अनुरोध।

छोटे चाचा की बातों पर मेघनाद ने बिगड़ कर और अपनी असीम शक्ति का परिचय दे कर और विभीषण को डरपोक, कापुरुष कह कर, चुप रहने को कहा। फिर उसने अपने पिता के कार्य्य को युक्तियुक्त एवं न्यायानुमोदित बतलाया। सद्विवेचक विभीषण ने ऐसी अपरिणामदर्शी मंत्रणा देने वाले को राजदण्ड देने योग्य कहा। प्यारे पुत्र के लिये ऐसे वाक्यों को सुन, राक्षसपति रावण क्रोध से जल उठा और क्रोध के आवेश में भर यद्वा तद्वा बकने लगा। उसने विभीषण जैसे अपने शुभचिन्तक सहोदर को ज्ञातिविरोधी, क्रूरस्वभाव, अशुभचिन्तक और लंका का राज्य सिंहासन पाने के लिये लोलुप बतला कर, उसका घोर अपमान किया। वह बोला कि यदि और किसीने ऐसी बात कही होती तो आज मैं उसकी खाल खिंचवा लेता, पर क्या करूँ यह मेरा सहोदर है, इससे लाचार हूँ।

विभीषण के प्रति, रावण का तिरस्कार।

विभीषण का लंका-परित्याग और रामचन्द्र के शरणापन्न होना।

नीतिविशारद विभीषण ने इस प्रकार तिरस्कृत और अपमानित हो कर, उसी क्षण रावण की सभा त्याग दी और अपने साथ चार अनुचरों को ले, वह समुद्र के इस पार श्रीरामचन्द्र जी के पास चला आया। आकाश में खड़े हो कर विभीषण ने पहले निष्कपटभाव से अपना वंशपरम्परागत परिचय दिया और अपने को श्रीरामचन्द्र जी के शत्रु का छोटा भाई बतलाया। यह इसलिये कि जिससे उस पर कपट चाल चलने का दोषारोपण न हो सके। हनुमान् को छोड़ रामचन्द्र की युद्ध-परामर्श-दायिनी समिति के सभी सदस्यों ने, विभीषण को कपट-रूपधारी रावण का गुप्तचर कह कर, उस पर विश्वास न करने का रामचन्द्र जी से अनुरोध किया, किन्तु दया और न्याय की मूर्ति रामचन्द्र ने क्षात्र धर्म्मानुसार शरण में आये हुए की रक्षा करना परम धर्म बतला समिति के सदस्यों के मत को अग्राह्य ठहराया। साथ ही सरल, सत्यभाषी विभीषण को निःसंकोच भाव से आश्वस्त किया। आशातीत अचिन्त्य श्रीरामचन्द्र जी के ऐसे सद् व्यवहार पर मोहित हो रावण का छोटा भाई विभीषण रामचन्द्र जी के चरणों पर गिर पड़ा और उसने अपने आने का कारण बतलाया। उसने बतलाया कि, उसे

१—कहा जाता है कि विभीषण ने अपने कथन के सत्य होने का विश्वास रामचन्द्र जी को दिलाने के लिये शपथ खायी थी कि यदि मैं असत्य कहता होऊँ, तो मैं कलियुग का ब्राह्मण और सौ पुत्रों का पिता होऊँ।

किस प्रकार अपने भाई के कुव्यवहार से अपने बालबच्चों का मोहत्याग कर, घर छोड़ना पड़ा है। साथ ही उसने भावी राक्षसयुद्ध में अन्त तक श्रीरामचन्द्र जी का साथ देने की प्रतिज्ञा की।

विभीषण के इस सत्य व्यवहार पर प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्र ने भी उसके साथ मैत्री कर ली। श्रीराम ने सुग्रीव के साथ मैत्री कर उनको किष्किन्धा की राजगद्दी पर बिठाने की प्रतिज्ञा की थी और पीछे उन्हें उस पर बैठाया था अवश्य, किन्तु विभीषण को तो लंका के राजसिंहासन पर अभिषिक्त करने की प्रतिज्ञा करने के साथ ही साथ लक्ष्मण से समुद्र का जल मँगवा रामचन्द्र ने लंकेश्वर के पद पर उसी क्षण अभिषिक्त भी कर दिया। यह भेद क्यों? इसका उत्तर एक बतलाया जा सकता है कि इसमें सन्देह नहीं कि सुग्रीव ने अपने बड़े भाई से त्रस्त और अपमानित हो कर रामचन्द्र जी के साथ मैत्री की थी। किन्तु सुग्रीव को रामचन्द्र के पराक्रम और शक्ति में सन्देह था, इसीलिये रामचन्द्र को सात साल वृक्षों को एक बाण से वेध और उस दैत्य के सूखे पड़े सिर को कई योजन के फासले पर पैर के अंगूठे से फेंक—सुग्रीव के समक्ष अपनी असीम शक्ति और अपने अमानुषिक पराक्रम एवं वीरत्व का परिचय दे उसके मन में विश्वास उत्पन्न कराना पड़ा था। यहाँ विभीषण को श्रीरामचन्द्र के असीम अतुलित अजेय पराक्रम साहस और वीरत्व में अणुमात्र भी सन्देह

न था। विभीषण को श्रीरामचन्द्र के अमानुषिक वीरत्व पर इतना दृढ़ विश्वास था कि उसने अपने बड़े भाई और श्रीरामचन्द्रजी के शत्रु राक्षसराज के सामने भी यह बात निःसंकोच भावसे कह डाली। अस्तु, जब विभीषण को श्रीरामचन्द्र पर इतना विश्वास था, तब रामचन्द्र ने भी केवल लङ्केश्वर बनाने की प्रतिज्ञा न कर, प्रतिज्ञात कार्य्य को, उसी समय से कार्यरूप में परिणत करने के लिये सूत्रपात कर दिया। इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी की युद्ध-परामर्श-दायिनी समिति में एक और सुयोग्य सदस्य बढ़ गया।

इसके बाद जब सागर के पार जाने का उपाय खोज कर बतलाने को विभीषण से कहा गया, तब विचक्षण बुद्धिसम्पन्न विभीषण ने पहले ही रामचन्द्र जी को उनके पूर्वपुरुष राजा सगर के साठ हज़ार पुत्रों द्वारा परिवर्द्धित सागर की आराधना करने का परामर्श दिया। गुणग्राही दाशरथी रामचन्द्र ने भी उनके परामर्शानुसार यथाविधि व्रत का अनुष्ठान कर सागर का आराधन किया।

चौबीसवाँ अध्याय।

रावण के गुप्तचर शुक की जासूसी।

जिस समय विभीषण ने रावण की सभा त्यागी थी, उसी समय शार्दूल नाम के एक राक्षस जासूस ने रावण को समुद्रपार श्रीरामचन्द्र के ससैन्य आ जाने की सूचना दी। तब रावण ने छिप कर शत्रु के बल का सच्चा हाल जानने के लिये और कपिराज सुग्रीव को अपना भाई

बतला, उन्हें शत्रु का साथ देने से रोकने के निमित्त शुक[1] नाम के एक कार्यदक्ष राक्षस को रामचन्द्र के शिविर में भेजा। रावण की आज्ञानुसार पक्षधारी शुक अति शीघ्र समुद्र के उस पार रामचन्द्र जी के शिविर में पहुँचा और उसने राक्षसराज के उपदेशानुसार कपिराज सुग्रीव से अकेले में मिल और अपने स्वामी का सन्देसा उन्हें सुनाया। किन्तु वानरी शिविर के रक्षकों द्वारा पकड़ा जा कर वह श्रीरामचन्द्र जी के सामने ला कर खड़ा किया गया। शत्रुपक्ष का दूत समझ दयालु रामचन्द्र ने डरे हुए शुक को छोड़ देने की आज्ञा दे दी, किन्तु वालि-तनय अंगद ने यह कह कर उसे पकड़ रखा लिया कि यह हमारे सेना के बलाबल को जान गया है और यह दूत न हो कर, गुप्तचर है। इसका अभी छोड़ना रणनीति की दृष्टि से अनुचित है।

समुद्र की उपस्थिति और नल के हाथ से पुल बँधवाने का परामर्श।

सागर की आराधना करते करते जब तीन दिन हो गये और तब भी वह न आया, तब श्रीरामचन्द्र जी को क्रोध उत्पन्न हुआ और लक्ष्मण से धनुष ले उस पर

१—शुक—पूर्वजन्म में बड़ा धर्मात्मा ब्राह्मण था। वह भी आश्रम में रहा करता था। एक दिन क्षुधित अगस्त्य ऋषि इसके आश्रम में गये। वहाँ बनावटी रसोइये का रूप धरे वज्रदंष्ट्र राक्षस ने अगस्त्य जी की पत्तल में नरमांस परोस दिया। उसे देखते ही अगस्त्य ने उसे राक्षसयोनि में उत्पन्न होने का शाप दिया। किन्तु पीछे जब उनको उसका कुछ भी अपराध न जान पड़ा, तब उसे यह वर दिया कि लंका-आक्रमणकारी राम के दर्शन कर वह उस योनि से छूट जायगा।

दिव्यास्त्र रखा । धनुषपर दिव्यास्त्र के रखे जाते ही समुद्र के भीतर खलबली मच गयी—समुद्र के जलजीव प्राण जाने के भय से इधर उधर भागने लगे । जल खौलने लगा—जल के धुवाँ सा छा गया । इसके बाद सागर के जल को सुखाने के लिये धनुष पर रखे हुए ब्रह्मदण्ड नामक बाण को देख भीत समुद्र तुरन्त ही तो हाथ जोड कर आ खड़ा हुआ और उसने विश्वकर्मा के पुत्र महावीर नल[1] द्वारा वृक्ष पत्थरों से पुल बँधवाये जाने की प्रार्थना की और उस पुल को अपने वक्षःस्थल पर धारण करने की प्रतिज्ञा की । तदनन्तर उसने श्रीरामचन्द्र जी से बड़ी नम्रता के साथ उस ब्रह्मदण्ड नामक बाण को धनुष से उतारने के लिये विनती की । उधर वरुण की प्रार्थना सुन रामचन्द्र जी ने उस अमोघ अस्त्र को द्रुमकूल्य स्थान-वासी डाँकुओं को मार डालने के लिये चलाया और वे सब मारे गये । वह प्रान्त अब भी मरुकान्तार (मार-वाड़) के नाम से प्रख्यात है ।

सेतुबन्धन । रामचन्द्र जी की आज्ञा होते ही बड़े बड़े बली वानर बड़े बड़े पहाड़ के टौर और बड़े बड़े पेड़ ला ला कर

१—कहा जाता है कि नल लड़कपन में सुहोत्रपुत्र राजर्षि जह्नु के आश्रम (Near modern Sultanganj, west of Bhagalpur) में पाला गया था । बाल्यसुलभचपलता से वह मुनि के दण्ड कमण्डलु आदि नदी में फेंक दिया करता था । उस समय क्रुद्ध हो मुनि ने उसे यह शाप दिया कि उसकी फेंकी हुई वस्तु जल में डूबेगी नहीं इसीसे उसके फेंके पर्वत वृक्ष समुद्र में नहीं डूबते थे ।

वीर नल को देने लगे। वीर नल भी पुल बना कर शीघ्र तैयार करने के उद्योग में कटिबद्ध हुए कहा जाता है यह पुल प्रति दिन तीन योजन (२४ मील) बाँधा जाता था। एक मास में नल ने ९० योजन पुल बाँधा। बचे हुए दस योजन का यह अद्भुत पुल हनुमान् जी ने एक दिन में बना कर पूरा किया था।

रामचन्द्र का ससैन्य समुद्र के पार पहुँचना।

पुल के तैयार होने पर, लक्ष्मण, दोनों मित्र तथा समस्त वानरसेना को साथ ले, शुभ मुहूर्त में प्रसन्नचित्त रामचन्द्र समुद्र के पार पहुँचे और लंका के पास वाले सुवेल नामक पर्वत पर, अपनी सेना का शिविर और मोर्चे ठीक कराने के कार्य में प्रवृत्त हुए। उन्होंने अपने शिविर की मोर्चाबन्दी इस प्रकार की।

सब के आगे तो लक्ष्मण सहित आपका केम्प पड़ा, उसके पीछे कुमार अंगद और सेनापति नील को स्थान दिया गया। इनके पीछे महावीर जाम्बवान्, और सुषेण और सबके पीछे कपिराज सुग्रीव का डेरा लगाया गया। सेनापति ऋषभ और गन्धमादन शिविर के दक्षिण और वामपार्श्व की रक्षा के लिये रखे गये। इस प्रकार व्यूह-रचना के समाप्त होने पर, रामचन्द्र की आज्ञा से शुक छोड़ दिया गया।

रावण द्वारा शुक और सारण की जासूसी का विवरण सुना जाना।

वानरों की कैद से छूट शुक सीधा रावण के पास गया और उसने वानरों द्वारा नोचे हुए अपने दोनों पंख दिखलाये। तदनन्तर उसने सीता को लौटा रामचन्द्र के

साथ सन्धिस्थापन करने का अनुरोध किया । यह सुनते ही राक्षसराज अप्रसन्न हो गया और शुक तथा सारण नाम के अपने दूसरे दो मंत्रियों को वानरों की सेना का बल जानने के लिये भेजा । ये दोनों राक्षस वानर का रूप धर वानरों के शिविर में घुसे और स्वच्छन्द घूम घूम कर वहाँ का भेद लेने लगे । उनको अपने काम में लगे थोड़ी ही देर हुई थी कि वे विभीषण द्वारा पकड़े जा कर श्रीरामचन्द्र के सामने खड़े किये गये । मिष्टभाषी रामचन्द्र ने उनके वहाँ आने का कारण सुन, उनको अपनी सारी सेना को दिखला दिया और उनके द्वारा रावण से कहला दिया कि हम अगले दिन अपने भार्या-पहारी से ससैन्य आ कर मिलेंगे । रामचन्द्र ने अपने सैनिकों से कह कर उन दोनों चरों को निरापद अपने शिविर से पहुँचाने की आज्ञा दी और वे सकुशल रावण के पास पहुँच गये । वहाँ जा इन दोनों ने भी रामचन्द्र के अपरिसीम पराक्रम का ढोल बजा, राम के साथ सन्धि कर लेने का रावण से अनुरोध किया । इसका फल यह हुआ कि इन दोनों पर भी अपने प्रभु की अवज्ञा करने का अभिशाप लगाया गया । तब अन्य उपाय न देख वे दोनों मंत्री रावण को उसकी सबसे ऊँची अटारी की छत पर ले गये और वहाँसे श्रीरामचन्द्र के शिविर को दिखा उनकी सेनाका उसे परिचय दिया ।

इसके बाद, श्रीरामचन्द्र की कार्यप्रणाली जानने के

लिये रावण ने शार्दूल प्रभृति अन्य राक्षसों को भेजा और वे भी विभीषण की दृष्टि से अपने को न बचा सकने के कारण पकड़ कर रामचन्द्र के सामने खड़े किये गये। पर श्रीरामचन्द्र तो इन तुच्छ व्यवहारों को नगण्य ही समझते थे, अतः वे दयावश हो ऐसे अपराधियों को छोड़ दिया करते थे और ये छोड़े हुए दूत रावण के पास लौट कर श्रीरामचन्द्र के साथ सन्धिस्थापन के लिये ही अनुरोध करते थे। मरणोन्मुख रावण इन अपने हितैषी और कल्याणकारी परामर्शदाताओं को अपना अशुभचिन्तक समझ लेता था और दुराग्रह के वशीभूत हो, उसके मन में श्रीरामचन्द्र के साथ युद्ध करने की बात पकी होती जाती थी।

पञ्चीसवाँ अध्याय।

रावण द्वारा सीता को श्रीरामचन्द्र जी का बनावटी कटा हुआ सिर दिखाया जाना और सरमा नाम्नी राक्षसी द्वारा सीता को धैर्य बंधाया जाना।

इसके बाद दुर्वृत्त रावण ने मंत्रियों की सलाह से विद्युज्जिह्व नाम के एक मायावी निशाचर से ठीक रामचन्द्र जी जैसा एक कटा हुआ और उससे रक्त टपकता हुआ एक मुण्ड बनवाया। फिर उस मुण्ड को और रक्त से भींगे तीर को हाथ में ले वह सीता जी के पास गया। उसे देख और स्वामी को मरा समझ रोती हुई सीता को अपने वशीभूत करने के लिये, वह बहुत कुछ सीता से कहने लगा था कि इतने में सेनापति प्रहस्त और मंत्रियों का उसको बुलावा आया और उसे सीता को

छोड़ तुरन्त सभागृह में युद्धसम्बन्धी मंत्रणा करने के निमित्त जाना पड़ा। उसके जाते ही वह मायानिर्मित मुण्ड भी न जाने किधर चला गया। यह देख विभीषण की भार्य्या पुण्यवती सरमा ने शोकार्त्ता सीता के पास जा कर, रामचन्द्र के सकुशल लंका में पहुँचने की बात कही और रावण का उनके साथ युद्ध करने का पक्का संकल्प भी जनाया। इससे हताश जानकी जी के मन में फिर धैर्य्य का संचार हुआ। इतने ही में लंका के द्वार पर रामचन्द्र का ससैन्य आगमनसूचक वानरों का गगन-भेदी नाद और भेरी का शब्द सुनायी पड़ा।

माल्यवान का कहा न मान कर रावण का युद्ध की तैयारी करना।

जब सभा में बैठ हुए रावण को, अपने सेनापतियों को शत्रु के साथ प्राणपण से युद्ध करने की उत्तेजना देते हुए, उसके मातामह माल्यवान् ने देखा, तब उसने अपने दौहित्र रावण को अनेक प्रकार से ऊँच नीच समझा युद्ध न छेड़ने का अनुरोध किया। किन्तु जब उसकी कही बातों का तिल भर भी प्रभाव रावण के ऊपर न पड़ा, तब वह चुपचाप उठ कर अपने घर चला गया। तब रावण लंकापुरी की रक्षा के लिये सैनिकों को यथा स्थान नियुक्त कर युद्ध की आवश्यक तैयारियाँ करने लगा। उसने सेनापति प्रहस्त को लंका के पूर्व द्वार पर, महापार्श्व और महोदर को दक्षिण द्वार पर, कुमार इन्द्रजीत को पश्चिम द्वार पर, नियुक्त किया और स्वयं उत्तर द्वार की रक्षा करने लगा।

गुप्तचरवेशी और विभीषण के भेजे उनके चारों सहचरों ने आ कर रावण की पुरी की रक्षा की इस योजना का हाल विभीषण को दिया। इसे सुनते ही रामचन्द्र ने बड़ी सावधानी से महावीर नील को लंका का पूर्व द्वार, कुमार अंगद को लंका का दक्षिण द्वार, और पवननन्दन हनुमान् जी को पश्चिम द्वार से लंका के ऊपर आक्रमण करने की आज्ञा दी और सुग्रीव एवं विभीषण को सेना के बीच में रहने की आज्ञा दे उन्होंने स्वयं लक्ष्मण सहित दशानन रक्षित लंका के उत्तर द्वार से पुरी में घुसने का संकल्प किया। अनन्तर दोनों भाई, सुग्रीव विभीषण आदि को ले, उस विशाल लंकापुरी को देखने के लिये सुवेल पर्वत के शिखर पर चढ़ गये और वहाँ से रावण के आवासभवनों (महलों) की शोभा और पुरी की समृद्धि देख विस्मित हुए।

लंकापुरीको घेरने के लिये रामचन्द्र का उद्योग।

इसी प्रकार लंका देखते समय, नीलाचल जैसे रावण को लाल कपड़े पहने हुए तथा नौकरों से घिर कर रामचन्द्र के शिविर का भेद लेते देख, सुग्रीव से न रहा गया और वे कुलाँच मार रावण के पास जा पहुँचे। रावण सुग्रीव का तिरस्कार कर, उन्हें पकड़ लेने को उद्यत हुआ। तब तो दोनों में द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। बहुत देर तक घुसंघुस्सा हो चुकने बाद, और बराबर बल वाले सुग्रीव को हराने में अपने को असमर्थ देख, रावण ने मायायुद्ध करना आरम्भ किया। जिस पर भी आकाशचारी सुग्रीव को वह

सुग्रीव द्वारा रावण का रोका जाना।

न हरा पाया। अन्त में थके हुए रावण को ज़मीन पर पटक और उसके मन माने रहे लगा, महाबलशाली सुग्रीव रामचन्द्र जी के पास वायु जैसे वेग से लौट आये।

अंगद का रावण के पास भेजा जाना।

विजयी सुग्रीव के मुख से रावण का हारना सुन और सुग्रीव के असाधारण साहस और वीरत्व की प्रशंसा कर, श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव को आगे कभी भी इस प्रकार अकेले शत्रु के घर में जाने का निषेध किया और उनके ऐसे असमसाहसिक कार्य को अयौक्तिक एवं नीतिविरुद्ध बतलाया। तदनन्तर शुभ मुहूर्त्त समझ उसी क्षण उन्होंने ससैन्य लंकावरोधार्थ प्रस्थान किया। श्रीरामचन्द्र जी ने पूर्व निर्देशानुसार अपनी ओर के सेनापतियों को अपने अपने निर्दिष्ट स्थानों पर सतर्क खड़ा देख, और राजनीति के अनुसार अंगद को भेज रावण से यह सन्देसा कहलाया कि या तो वह सीता को लौटा कर क्षमा प्रार्थना करे अथवा युद्ध करने को तैयार हो।

रावण के आवासभवन में अंगदद्वारा उपद्रव।

यह सुन अंगद प्रसन्न होते हुए बड़ी तेज़ी के साथ सभाभवन में बैठे हुए रावण के सामने जा खड़े हुए। फिर रावण को अपना परिचय दे अपने वहाँ जाने का कारण बतलाया। इस पर दुर्वृत्त रावण ने क्रोध में भर लाल नेत्र कर, अंगद को पकड़ कर मार डालने की आज्ञा दी। आज्ञा होते ही राक्षस अंगद पर टूट पड़े। अकेले अंगद ने कूद फाँद कर उन सबको वहीं मार डाला और लातें मार कर रावण के आवासभवन को गिरा दिया। फिर रावण को

बहुतसी खरी खोटी बातें सुना, उसे अपमानित कर तथा अन्य राक्षसों के मन में भय उत्पन्न कर, प्रसन्न होते हुए युवराज अंगद श्रीरामचन्द्र जी के पास लौट गये।

छब्बीसवाँ अध्याय।

वानर और राक्षसों की प्रथम मुठ-भेड़।

बारंबार तिरस्कार और अपमान न सह कर, रावण ने तुरन्त ही, रामचन्द्र की सेना के साथ, जो लंकापुरी के चारों ओर घेरा डाले पड़ी थी, युद्ध करने के लिये अपनी सेना को आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही समस्त सैनिक गण अपने अपने अनुचरों को साथ ले, और महा-कोलाहल करते हुए युद्ध करने को नगरी के बाहिर निकले। वानर और राक्षस—परस्पर जयाकांक्षी हो, लड़ने लगे। अंगद मेघनाद के साथ, हनुमान् जम्बुमाली के साथ, लक्ष्मण विरूपाक्ष के साथ और श्रीरामचन्द्र महाबली चार राक्षसों के साथ युद्ध करने लगे। वानर तो बड़े बड़े वृक्षों और शिलाखण्डों से राक्षसों को मारते थे और राक्षस पैने बाणों से वानरों को मारते थे।

इन्द्रजीतद्वारा राम और लक्ष्मण का नागपाश में बाँधा जाना।

श्रीराम लक्ष्मण और हनुमान् ने युद्ध में अपने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को मार राक्षससैन्य को विचलित किया। राक्षससैन्य को विचलित देख रावणपुत्र मेघनाद दुगुने साहस से अंगद के साथ घोर युद्ध करने लगा। धीरे धीरे साँझ हुई और रणक्षेत्र पर अन्धकार का पर्दा पड़ा। महावीर अंगद द्वारा फेंके हुए एक बड़े भारी पर्वत के

गिरने से सारथी और घोड़ों सहित रथ के चूर चूर हो जाने पर, इन्द्रजीत आकाश में पहुँचा और माया फैला कर छिपे छिपे तीक्ष्ण बाणों से श्रीरामचन्द्र की सेना को घायल करने लगा। अन्त में उसने नागमय पाशास्त्र रख सौ सौ बाणों से श्रीराम लक्ष्मण को जकड़ कर पृथिवी पर गिरा दिया।

सीता को पाशबद्ध राम लक्ष्मण को दिखाना।

इन्द्रजीत द्वारा राम लक्ष्मण का पाश द्वारा बाँधा जाना सुना और परमप्रसन्न हो, रावण ने त्रिजटा सहित सीता को पुष्पक विमान में बिठा रणक्षेत्र दिखाने को भेजा। सीता जी अपने पति और देवर को नागपाश में बद्ध और अचेतनावस्था में देख, अत्यन्त विकल हुई। तब स्वप्न की याद दिला त्रिजटा ने सीता को धीरज धराया और कहा बहुत शीघ्र दोनों भाई निरापद हो जायँगे।

गरुड़जी का आना और नागपाश से छुटकारा।

जब अनेक उपाय करने पर भी श्रीराम और लक्ष्मण के नागपाश न टूटे, तब तो विभीषण और सुग्रीव आदि सभी अत्यन्त विकल और चिन्तित हुए। उधर इस नागपाश में श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के बाँधे जाने का हाल रघुकुल के मित्र गरुड़ जी ने सुना। वे तुरन्त, बड़े वेग से रणक्षेत्र में आ उपस्थित हुए। उनके आते ही नाग अपने पाशों को ढीला कर वहाँ से भागे। तब स्पर्शमात्र से दोनों भाइयों की यंत्रणा दूर कर, और अपने को उनके पिता का मित्र बतला, तथा युद्ध में विजयी होने का आशीर्वाद दे पक्षिराज गरुड़ जहाँ से आये थे—वहीं को चले गये।

श्रीराम और लक्ष्मण को स्वस्थ और पहिले से भी अधिक सबल देख, आनन्द में उन्मत्त वानरों का गगन-व्यापी कोलाहल सुन, सीता तो प्रसन्न हुईं, किन्तु सभा-भवन में बैठा रावण दुःखी हुआ।

सत्ताईसवाँ अध्याय।

हनुमानद्वारा धूम्राक्ष का वध।

राम लक्ष्मण का नागपाश से मुक्त होने का संवाद सुन चिन्ताकुल रावण ने परमप्रतापी धूम्राक्ष को लड़ने के लिये भेजा। चतुरङ्गिणी सेना साथ ले धूम्राक्ष रणक्षेत्र में पहुँचा। दोनों ओर से घोर युद्ध हुआ। जब राक्षस, *वानरों के आक्रमण को न सह सके तब धूम्राक्ष ने शोणित* अस्त्र द्वारा वानरों को मारना आरम्भ किया। दूर से वानरों की दुर्दशा देख हनुमान्, एक बड़ा भारी पर्वत उठा कर, धूम्राक्ष की ओर दौड़े और क्षण भर में धूम्राक्ष के सारथी सहित घोड़ों और रथ को चटनी बना डाला। तब विरथ धूम्राक्ष पैदल ही युद्ध करने लगा। हनुमान् ने दूसरे एक शिलाखण्ड से उसे भी मार कर यमालय भेज दिया।

अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र वध।

धूम्राक्ष के मारे जाने का संवाद सुन रावण क्रोधान्ध हो गया और वज्रदंष्ट्र नामक एक रणकुशल राक्षस को सेनापति बना कर, और उसको बहुतसी सेना दे उसे युद्धक्षेत्र में भेजा। वज्रदंष्ट्र द्वारा बहुतसे वानरों के मारे जाने पर, अंगद के क्रोध की सीमा न रही। तब अंगद

ने एक बड़े पेड़ को उखाड़ और उसके प्रहार से वज्रदंष्ट्र की जीवनलीला तत्क्षण समाप्त कर दी।

हनुमानद्वारा अकम्पन का वध।

इसके बाद रावण बहुत क्रुद्ध हुआ और अकम्पन नामक एक तेजस्वी राक्षस को सेनानायक बना कर, उसने युद्धक्षेत्र में भेजा। उसने आ कर वानरों की सेना को व्यथित कर डाला। तब हनुमान् ने एक बड़े पत्थर के प्रहार से उसको भी मारना चाहा, किन्तु मारे बाणों के अकम्पन ने हनुमान् जी के फेंके पत्थर को टुकड़े टुकड़े कर डाला। साथ ही तीक्ष्ण बाणों के आघात से हनुमान् को भी व्यथित किया। तब तो हनुमान् ने घोर नाद कर एक बड़े वृक्ष के आघात से अकम्पन को भी मार गिराया।

अंगद के हाथ से नरान्तक और नील के हाथ से प्रहस्त का वध।

अकम्पन के मारे जाने पर उसकी जगह रावण ने प्रधान सेनापति प्रहस्त को भेजा। यह प्रहस्त वही था जिसने रावण से सीता लौटाने का अनुरोध किया था। रावण के कहने से लंकापुरी की तृतीयांश सेना और नरान्तक आदि चार महाबली सेनानायकों को साथ ले, प्रहस्त रणस्थल में पहुँचा। दूसरी ओर से अंगद आदि वानरों ने इनका सामना किया। इस युद्ध में बहुतसे वानर मारे गये। यह देख प्रहस्त दूने उत्साह से वानरों का नाश करने लगा। यह देख क्रुद्ध हो अग्निपुत्र महावीर नील ने एक बड़ा भारी शाल का पेड़ उखाड़ा और उसके द्वारा प्रहस्त का धनुष भंग कर डाला। तब वह बली राक्षस गदा ले कर नील के ऊपर दौड़ा और

नील के सिर पर गदा जमा ही तो दी । गदा के आघात से नील का शरीर रक्त से लाल हो गया । अब तो नील के क्रोध की सीमा न रही और उसने एक पत्थर प्रहस्त की खोपड़ी में ऐसे ज़ोर से मारा कि उसकी खोपड़ी चूर चूर हो गयी । नील के विजयनाद से आकाश प्रतिध्वनित हुआ ।

रावण का स्वयं रणक्षेत्र में जाना ।

प्रहस्त के मारे जाने का संवाद सुन शोकार्त्त और क्रुद्ध रावण, बहुतसे सेनानियों को अपने साथ ले, स्वयं युद्ध करने को गया । घोर युद्ध में अनेक वानरों को मार, रावण आगे बढ़ने लगा । तब हाथ में एक बड़ा पहाड़ ले सुग्रीव उसके रास्ते को रोक खड़े हुए । सुग्रीव के फेंके पत्थरों और वृक्षों को रावण ने बाणों से काट कर निष्फल कर दिया और अस्त्राघात से सुग्रीव को मूर्च्छित कर रावण आगे बढ़ा । यह देख लक्ष्मण उससे लड़ने को प्रस्तुत हुए । किन्तु हनुमान् ने उन्हें रोका और वे स्वयं कूद कर रावण के रथ पर चढ़ गये और उसके एक ऐसे ज़ोर से तमाचा मारा कि रावण कुलटैया खा कर रथ के नीचे गिर पड़ा । कुछ ही क्षणों बाद जब रावण सचेत हुआ तब उसने भी हनुमान् के मूँका मार उन्हें विचलित किया । इतने में छोटा रूप धारण कर नील उसके रथ पर चढ़ कर कभी उसके रथ की ध्वजा पर, कभी उसके सिर पर, कभी उसके धनुष पर, कभी उसकी पीठ पर चढ़ उसे तंग करने लगे । तब रावण ने नील को पकड़ना

चाहा, किन्तु वह उन्हें न पकड़ सका और हार कर अग्निबाण से नील को पृथिवी पर गिरा दिया।

ब्रह्मशक्ति द्वारा लक्ष्मण का मूर्च्छित होना।

नील को मूर्च्छित देख, महावीर लक्ष्मण हाथ में धनुष बाण ले रावण के सामने पहुँचे। राक्षसराज ने उन पर तीक्ष्ण बाण चलाये। किन्तु लक्ष्मण ने उन सब को काट डाला और अपने चलाये तीक्ष्ण बाणों से रावण के शरीर को चलनी की तरह छेद डाला। समर-कुशल रावण ने, विक्रमशाली लक्ष्मण को विमुख करने में अपने को असमर्थ देख, उन पर अमोघ ब्रह्मशक्ति फेंकी। लक्ष्मण ने अनेक दिव्यास्त्रों से उसको रोकना चाहा, पर वह न रुकी और वह जा कर उनकी छाती में घुस गयी। लक्ष्मण, शक्ति के लगने पर भी ब्रह्मतेज के बल केवल मूर्च्छित हो गिर गये, पर मरे नहीं।

लक्ष्मण को उठा कर ले जाने की रावण का वृथा चेष्टा।

इतने में रावण ने गिरे हुए लक्ष्मण को गोद में उठा कर लंकापुरी में ले जाना चाहा—किन्तु बहुत ज़ोर लगाने पर भी लक्ष्मण उसके उठाये न उठे। रावण का यह कृत्य दूर ही से हनुमान् जी ने देखा। देखते ही वे दौड़े और रावण की पीठ पर एक चपेटा मारा उसकी चोट से रावण खून को वमन करने लगा और अपने रथ में जा बैठा। तब श्रीरामजी का स्मरण कर हनुमान् जी ने अनायास लक्ष्मण को अपनी गोद में उठाया और वे उन्हें रामचन्द्र जी के पास ले गये।

राम के पास

मूर्च्छित लक्ष्मण को श्रीरामचन्द्र जी ने ब्रह्मतेज की

सहायता से सचेत किया और क्रोध में भर तथा धनुष वाण उठा श्रीरामचन्द्र स्वयं रावण के साथ युद्ध करने लगे । दोनों वीरों के चलाये वाणों से रणक्षेत्र भर गया। अन्त में श्रीरामचन्द्र ने रावण के मस्तकों के मुकुटों को छेदना आरम्भ किया । तब तो रावण डर कर, लंका के भीतर भाग गया । यह देख विजयनाद करती हुई वानरसेना राक्षसों की सेना पर टूट पड़ी और राक्षसों को मारने लगी ।

रावण का अद्भुत युद्ध और रावण का भागना।

अट्ठाईसवाँ अध्याय ।

लंका में पहुँच भीत रावण ने अपने मंत्रियों को बुला कर, सलाह की । इस परामर्श के अन्त में यह बात निश्चित हुई कि कुम्भकर्ण जगाया जाय और वह लड़ने को भेजा जाय । कुम्भकर्ण को सोये केवल नौ दिन हुए थे—अतः कुम्भकर्ण को जगाते समय राक्षसों ने डर कर, उसके भोजन की सामग्री ढेर की ढेर एकत्र करके रखी। तब उसके कान पर ढोल बजवाये, दाँय चलवायी । इसी प्रकार उसके जगाने के लिये अनेक यत्न कर के उसे जगाया। वह जागा और क्रोध में भर उसने जगाये जाने का कारण पूँछा । तब डर से काँपते हुए उन राक्षसों ने उसे लंकापति की आज्ञा सुनायी ।

असमय में कुम्भकर्ण को जगाना।

कुम्भकर्ण जागा और जाग कर भरपेट भोजन किये। भोजन कर जब वह रावण की सभा में गया, तब रावण ने उससे सारा हाल कहा—और युद्ध कर राम लक्ष्मण

वानरवीरों के साथ कुम्भकर्ण का युद्ध ।

को मार डालने का उससे अनुरोध किया । सीताहरण का अनुमोदन न कर के भी, बड़े भाई की आज्ञानुसार कुम्भकर्ण रणक्षेत्र में पहुँचा । पहुँचते ही उसने वानरों को खाना आरम्भ किया । तबतो वानर भागने लगे और उन को भागते देख-अंगद नील हनुमान् उसके ऊपर दौड़े । थोड़ी ही देर के भीतर, कुम्भकर्ण ने इन तीनों वीर वानरों को गदा के प्रहार से विकल कर दिया । यह देख कपिराज सुग्रीव आगे बढ़े और कुछ देर तक पर्वतों और पेड़ों से उसपर आक्रमण कर अन्त में उसकी गदा के प्रहार से वे भी मूर्च्छित हो बेकाम हो गये । किन्तु थोड़ी ही देर बाद सुग्रीव सचेत हुए और कुम्भकर्ण की गोद में पहुँच दाँत तथा नखों से उसके शरीर को क्षतविक्षत कर और उसके नाक कान काट कर श्रीरामचन्द्र जी के पास लौट गये । कुम्भकर्ण अपनी ऐसी दशा देख और क्रोध में भर फिर भी वानरों को व्यथित करने लगा ।

कुम्भकर्ण का पतन ।

इसके बाद घोरदर्शन कुम्भकर्ण, अपने सामने लक्ष्मण को युद्ध करने के लिये खड़ा देख, तथा उनकी उपेक्षा कर, श्रीरामचन्द्र जी की ओर गया । जाते ही उसने श्रीरामचन्द्र के ऊपर एक मूसल फेंका, जिसे बाणों से श्रीरामचन्द्र ने काट डाला । तब खाली हाथ कुम्भकर्ण रामचन्द्र जी को पकड़ने के लिये दौड़ा । यह देख श्रीरामचन्द्र ने दिव्यास्त्र से उसकी दोनों बाहें काट डालीं । वह राक्षस तब लातों ही लातों मार बहुतसे वानरों को यमलोक

भेजने लगा। यह देख श्रीरामचन्द्र ने उसके दोनों पैर भी काट डाले। तब तो वह दुष्ट अपने शरीर ही से वानरों को पीसने लगा। तब श्रीरामचन्द्र ने अमोघ ब्रह्मास्त्र से कुम्भकर्ण का सिर ही काट डाला। उसका शरीर समुद्र में गिरा और सारे समुद्र में उसके गिरने से खलबली पड़ गयी।

त्रिशिरा देवान्तक आदि का पतन।

सहोदर महावीर कुम्भकर्ण के मारे जाने का दुःखदायी संवाद सुन रावण कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। उसकी यह दशा देख कुमार अतिकाय, त्रिशिरा, देवान्तक, नरान्तक, महोदर एवं महापार्श्व प्रभृति महाबली सेनानी बड़े अभिमान के साथ युद्धक्षेत्र में पहुँचे। इन राक्षसों ने बड़ी दक्षता से युद्ध कर वानरों को व्यथित किया। यह देख नील अंगद हनुमान् ने इन पर पत्थर और वृक्षों की वर्षा की किन्तु हस्तलाघव से इन राक्षसों ने उन सबको काट डाला। अन्त में अतिकाय को छोड़ और सब राक्षस वीर वानरों के हाथ से मारे गये।

अतिकाय का वध।

रणनिपुण रावणपुत्र अतिकाय, भाई त्रिशिरा और अन्य चचेरे भाइयों को मरा देख, क्रोध में भर और खून से सनी एक बड़ी तलवार हाथ में ले वानरों को काटने लगा। यह देख लक्ष्मण उसके सामने पहुँचे। लक्ष्मण के पराक्रम की अतिकाय ने प्रशंसा कर उनके शरीर को मारे बाणों के जर्जरित कर दिया। बहुत देर तक युद्ध करने के कारण अतिकाय को श्रान्त देख, और विभीषण के परामर्शानुसार लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र से अतिकाय को

मार डाला । उसके मारे जाते ही उसके साथी राक्षस हतोत्साह हो भागे ।

इन्द्रजीत का पुनः रणक्षेत्र में आगमन ।

प्यारे पुत्र और भाई की मृत्यु से हतोद्यम, विषादमग्न और एकान्त में बैठे हुए रावण को मंत्री और उसके कुटुम्बी समझाने लगे । इन्द्रजीत ने जब यह दुःखदायी संवाद सुना, तब वह तुरन्त पिता के पास गया और शत्रुओं को जीतने के लिये युद्धयात्रा करने का पिता से आदेश चाहा । इन्द्रजीत के उत्साह को देख रावण को कुछ धैर्य बँधा । पिता की आज्ञा ले मेघनाद प्रसन्न होता हुआ पहले यज्ञशाला में गया और वहाँ विधिवत् होम कर और अस्त्र प्राप्त कर, ससैन्य रणक्षेत्र में पहुँचा।

इन्द्रजीत द्वारा राम लक्ष्मणादि का मूर्च्छित किया जाना।

रणक्षेत्र में पहुँच इन्द्रजीत मायाबल से तुरन्त आकाश में जा छिपा और वहाँ से बाणों की वर्षा करने लगा । वानरों की विकलता की सीमा न रही-वे इधर उधर भागने लगे । इन्द्रजीत ने सेनापति नील मंत्रिवर जाम्बवान्, प्रभृति महाबली वानरों को मूर्च्छित कर दिया और फिर वह श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण की ओर मुड़ा । उसने अन्तरिक्ष ही से ब्रह्मास्त्र द्वारा दोनों भाइयों को मूर्च्छित कर दिया । फिर सारी वानरसेना को छिन्न भिन्न कर वह अपने पिता के पास लौट गया ।

हिमालय पर्वत से हनुमान का ओषधि लाना।

श्रीराम की सेना में केवल हनुमान् और विभीषण ही मूर्च्छित नहीं हुए थे । ये दोनों उन मूर्च्छित वानरों में पड़े जाम्बवान् को ढूँढ़ने लगे । अन्त में जाम्बवान् मिले

और उनसे सलाह ली कि अब क्या करना चाहिये। तब वृद्ध जाम्बवान् ने शीघ्रगामी हनुमान् को हिमालय के निकट ऋषभ और कैलास पर्वतों के बीच में उत्पन्न होने वाली प्रदीप्त तेजोमयी ओषधि लाने को भेजा। हनुमान् उसी क्षण प्रस्थानित हुए और थोड़ी ही देर में ठिकाने पर पहुँच गये।

ओषध के प्रभाव से राम लक्ष्मण का पुनर्जीवित होना।

हनुमान् उन बूटियों को ढूँढ़ने लगे पर जब उन्होंने देखा कि वे बूटियाँ छलने के लिये हीनप्रभ हो कर छिप गयी हैं, तब क्रोध में भर उन्होंने उस पहाड़ ही को उखाड़ लिया और उसे उठा वे लंका की ओर चल दिये। लंका में पहुँच उन बूटियों के प्रयोग से श्रीराम और लक्ष्मण और अन्य वानरों को जीवित किया। फिर हनुमान्‌जी जाम्बवान् के कथनानुसार उस पर्वत को जहाँ का तहाँ रख भी आये। वानरों ने हनुमान् के प्रसाद स पुनर्जीवन प्राप्त किया और दुगुने उत्साह से सिंहनाद करने लगे।

उन्तीसवाँ अध्याय।

वानरों द्वारा लंकादहन।

सुग्रीव ने अपनी समस्त सेना को पुनर्जीवित देख, और प्रसन्न हो लंका को फूँक देने की वानरों को आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही वानरगण हाथों में पलीते ले लंका को फूँकने लगे। थोड़ी देर में प्रायः समस्त लंकापुरी जल उठी। वानर पकड़ पकड़ कर राक्षसों को अग्नि में

डाल जलाने लगे । यह देख राक्षसियाँ चिल्लाती हुई समुद्र में कूदने लगीं । पुरी में इस प्रकार के अत्याचार होते देख, क्रुद्ध रावण ने कुम्भकर्ण के वीर पुत्र कुम्भ एवं निकुम्भ को युद्ध करने को भेजा ।

युद्ध में कुम्भ और निकुम्भ का मारा जाना ।

थोड़े से सेनानायक और असंख्य राक्षसों को साथ ले, कुम्भ और निकुम्भ युद्धक्षेत्र में पहुँचे । जाते ही अस्त्र शस्त्रों की वर्षा से वानरों को इन दोनों ने विकल कर दिया । यह देख और वानरों को धैर्य धरा, अंगद और हनुमान् ने इस घोर युद्ध में राक्षस सेनानायकों को बीन बीन कर मारा । सुग्रीव ने कुम्भ के धनुष, रथ, सारथी और घोड़ों को पीस डाला । तब वह राक्षस, सुग्रीव के साथ कुश्ती लड़ने लगा । कुश्ती में थक कर वह राक्षस सुग्रीव के हाथ से मारा गया । तब पिता के समान बली निकुम्भ ने बाप का बदला लेने के लिये, कपिराज सुग्रीव को घबड़ा दिया । इतने में हनुमान् निकुम्भ के सामने जा पहुँचे। अनेक क्षणों तक पर्वत और वृक्षों से उस पर आक्रमण कर अन्त में उसे हनुमान् ने मार डाला ।

रामचन्द्रद्वारा मकराक्ष का मारा जाना ।

इसके बाद रावण ने खरपुत्र मकराक्ष को भेजा । यह भी बड़ी वीरता से लड़ा और थोड़ी ही देर में श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से मारा गया ।

इन्द्रजीतद्वारा माया की सीता का मारा जाना ।

रावण ने श्रीरामचन्द्र जी का कटा सिर बनवा सीता जी को धोखा दिया था । अब उसके पुत्र इन्द्रजीत ने

माया की सीता तैयार करायीं और उन्हें रथ में बिठा वह युद्धक्षेत्र में ले आया । वहाँ हनुमान् के सामने रोती हुई मायानिर्मिता सीता का उसने सिर काट डाला । यह देख हनुमान् दुःखी हुए और तुरन्त राम के पास आ कर सारा वृत्तान्त कहा ।

विभीषणद्वारा राम को बनावटी सीता का हाल विदित होना और इन्द्रजीत के मारने के लिये मंत्रणा।

उस इन्द्रजीत द्वारा सीता का मारा जाना सुन श्रीरामचन्द्र जी मूर्च्छित हो गये । लक्ष्मण ने बहुतसे यत्न कर उन्हें सचेत किया और उन्हें बहुत कुछ समझाया । इतने में विभीषण ने वहाँ पहुँच कर सारा भगडा फोड़ा और कहा कि वह तो बनावटी सीता थी । साथ ही यह भी कहा कि अब मामला गहरा होता जाता है और शीघ्र ही हम सबको मिल कर इन्द्रजीत को मार डालने का उद्योग करना चाहिये । क्योंकि अब वह निकुम्भिला देवी के मन्दिर में अजेय अनुष्ठान करनेके लिये गया है । यदि कहीं उसका यह अनुष्ठान पूरा हो गया और यज्ञकुण्ड से उसे रथ और दिव्य धनुष मिल गया, तो फिर वह किसीके मारे न मरेगा । अतः उसके अनुष्ठान में विघ्न डाल कर उसे मार डालना चाहिये ।

इन्द्रजीत के अनुष्ठान में विघ्न और उसके साथ युद्ध ।

विभीषण की सलाह और श्रीरामचन्द्र के आज्ञानुसार हनुमान् और लक्ष्मण सहित विभीषण अनेक सैनिकों को साथ ले मेघनाद के अनुष्ठान में विघ्न डालने को निकुम्भिला देवी के मन्दिर में पहुँचे । इन्द्रजीत ने अनुष्ठान पूरा होने तक ठहरने की अपने चचा विभीषण से

प्रार्थना की–किन्तु विभीषण न माने । तब मेघनाद उनको गालियाँ देता हुआ अनुष्ठान छोड़ उठ बैठा और लक्ष्मण के साथ युद्ध करने लगा । उसने लक्ष्मण को कुछ क्षणों के लिये मूर्च्छित कर अन्यान्य वानर वीरों को व्यथित किया । इतने में लक्ष्मण सचेत हुए और दुगुने उत्साह से वे शत्रु से लड़ने लगे । देखते ही देखते लक्ष्मण ने उसका धनुष काट डाला-घोड़े और सारथी को मार डाला तथा रथ तोड़ डाला । इन्द्रजीत सबकी आँख बचा लंका में गया और वहाँ से दूसरे रथ में बैठ पुनः लक्ष्मण से आ भिड़ा । उसकी इस स्फूर्ति ने कौशल को देख सब विस्मित हुए । स डालगा ।

इन्द्रजीत का वध ।

दूसरी बार विभीषण के द्वारा लगा बाणों से काट गाने पर मेघनाद पैदल ही युद्ध करने लमारा गया । अनेक दिव्यास्त्रों को उसने अपने बदला लेने के लिये, तब क्रुद्ध हो लक्ष्मण ने मंत्रपूत इन्द्रास्त्र द्वारा उसका सकुण्डल मस्तक काट कर फेंक दिया । इन्द्रजीत के मारे जाने पर उसके साथी राक्षस डर कर भाग गये । तदनन्तर हनुमान् के कन्धे पर लक्ष्मण को बैठा, प्रसन्न होते हुए विभीषण श्रीराम के पास पहुँचे । प्रसिद्ध धनुर्धारी मेघनाद के मारे जाने का सुखद संवाद सुन श्रीरामचन्द्र जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने लक्ष्मण हनुमान् विभीषणादि की प्रशंसा की । हर्ष से विह्वल वानर श्रीरामचन्द्र की-जय कह कर आकाश को गुंजाने लगे ।

तीसवाँ अध्याय ।

शोकोन्मत्त रावण का सीता-हनन उद्योग ।

प्राणाधिकप्रिय पुत्र इन्द्रजीत के मारे जाने का समाचार सुन, रावण की आँखों के सामने अँधेरा छा गया और वह मूर्च्छित हो सिंहासन के नीचे गिर पड़ा। बहुत देर बाद जब उसकी मूर्च्छा टूटी तब पागलों की तरह उन्मत्त हो और हाथ में एक पैनी तलवार ले—सारी विपत्तियों की जड़ सीता का वध करने के अभिप्राय से वह अशोकवन की ओर दौड़ा। रावण की उस भीषण मूर्त्ति को देख, जानकी अपने को मरी हुई समझ—केले के पत्ते की तरह थर थर काँपने लगीं। रावण को उस समय यह ज्ञान न रहा कि वह क्या कर रहा है। ज्यों ही सीता का सिर काटने को उसने तलवार उठायी त्यों ही पास खड़े बूढ़े मंत्री ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे समझाया कि स्त्रीवधरूपी पाप के बोझ को सिर पर चढ़ाना ठीक नहीं है। मंत्री की बात का रावण के चित्त पर प्रभाव पड़ा और बालकों की तरह वहाँ से भाग कर वह अपने सिंहासन पर आ बैठा और विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिये। बहुत देर तक अपनी उपस्थित दशा पर विचार कर उसने बचे हुए राक्षसों को श्रीराम लक्ष्मण,सहित वानरसेना को मार डालने के लिये रणक्षेत्र में भेजा और अगले दिन उसने स्वयं युद्धक्षेत्र में जाने का दृढ़ संकल्प किया। इसी संकल्पानुसार उसने

अपना रथ तैयार कराया और उस पर ब्रह्मा जी का दिया हुआ कवच, धनुष तथा अन्य अस्त्रादि सम्हाल कर रखे ।

बचे हुए सेनानियों की युद्ध यात्रा और उनका भाग जाना ।

राक्षसराज के आदेशानुसार बचे बचाये सेनापति अपनी चतुरङ्गिणी सेना को ले युद्धक्षेत्र में पहुँचे और प्रचण्ड वेग से आक्रमण कर वानरों को नष्ट करने लगे । तब रामचन्द्र जी स्वयं धनुष उठा रणक्षेत्र में आ खड़े हुए और उन्होंने इतने बाण चलाये कि रणक्षेत्र बाणों के पिंजरे में बन्द सा हो गया । अन्त में श्रीराम ने गन्धर्वास्त्र छोड़ा । उसके छोड़ते ही राक्षसों को अपनी सेना में राम ही राम दिखलायी पड़ने लगे और इस भ्रम में पड़ वे आपस ही में एक दूसरे को मारने काटने लगे । इस प्रकार प्रायः समस्त राक्षस-सेना मारी गयी । बहुत थोड़े जो बच वे अपने प्राण ले लंका में भाग गये । इस युद्ध में लङ्कापुरी वीरशून्या हो गयी । लंकापुरी के प्रत्येक घर में विधवा राक्षसियाँ हाहाकार करने लगीं ।

सुग्रीव के हाथ से विरूपाक्ष और महोदर का मारा जाना तथा अंगद के हाथ से महापार्श्व का वध ।

इस अन्तिम लड़ाई का हाल सुन रावण के क्रोध की सीमा न रही । वह मरने से बचे हुए विरूपाक्ष, महोदर और महापार्श्व नाम के तीन सेनापतियों और राक्षसों को साथ ले स्वयं लड़ने के लिये युद्धक्षेत्र में पहुँचा । राक्षस और वानर एक दूसरे को मारने के लिये प्राण पण से युद्ध करने लगे । यह युद्ध बड़ा भयंकर था । कपिराज सुग्रीव ने सिंहनाद करते हुए विरूपाक्ष और महोदर को मार डाला । उधर युवराज अंगद ने सेनानायक महापार्श्व

को वृक्षों और पर्वतों की मार से व्याकुल कर, अन्त में घूसों की मार से उसको मार डाला।

रावण के साथ युद्ध।

जब तीनों सेनापति मारे जा चुके तब रावण बड़े दर्प के साथ स्वयं युद्ध करने लगा। उसके तीक्ष्ण अस्त्रों के प्रहार को वानर बहुत देर तक न सह सके। वानर भाग चले। तब रामचन्द्र के पास वह पहुँचा। रावण को देखते ही रामचन्द्र जी क्रोध में भर गये और भीषण अस्त्रजाल से दिशाओं को ढक दिया। लक्ष्मण और विभीषण श्रीरामचन्द्र के साथ साथ रहे और इस भीषण युद्ध को देखने लगे। कुछ देर तक श्रीरामचन्द्र के साथ युद्ध कर, रावण ने पुत्रघाती लक्ष्मण के ऊपर बाणों का बरसाना आरम्भ किया। तब लक्ष्मण ने भी उस पर बाण फेंके।

लक्ष्मण के शक्ति का बाणलगना

बीच बीच में रावण, विभीषण पर भी बाण फेंक दिया करता था। यह देख विभीषण ने गदा के आघात से घोड़ों सहित उसके रथ को चूर चूर कर दिया। इस पर रावण इतना बिगड़ा कि उसने विभीषण को मार डालने के लिये एक भयानक बाण चलाया। महावीर लक्ष्मण ने अपने बाणों से उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। अपना वार खाली जाते देख रावण ने क्रोध में भर मय दानव की दी हुई अमोघ शक्ति लक्ष्मण के ऊपर छोड़ी। वह दमदमाती और चमकती हुई शक्ति श्रीराम और लक्ष्मण दोनों के अनेक दिव्यास्त्रों द्वारा रोकने का

प्रयत्न किये जाने पर भी लक्ष्मण की छाती में घुस गयी । उसके आघात से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गिर पड़े ।

हनुमानद्वारा लायी हुई ओषधि से लक्ष्मण का सचेत होना ।

लक्ष्मण की ऐसी दशा देख रामचन्द्र जी ने क्रोध में भर मारे बाणों के रावण को विकल कर दिया । यहाँ तक कि उसे अपने प्राण बचाने के लिये लंका में भाग जाना पड़ा । उसके भाग जाने पर युद्ध बन्द हुआ । लक्ष्मण की दशा देख भ्रातृवत्सल श्रीरामचन्द्र जी विलाप कर के रोने लगे । अन्त में वानरश्रेष्ठ सुषेण के परामर्श से लक्ष्मण की छाती से वह शक्ति खींच कर निकाली गयी और जो ओषधि हनुमान् जी पहले लाये थे—उसीको लाने के लिये हनुमान् जी पुनः भेजे गये । बातकीबात में हनुमान् जी अपेक्षित वस्तु को ले आये । महाप्राज्ञ वीर सुषेण ने लक्ष्मण की चिकित्सा कर शीघ्र उन्हें आरोग्य कर दिया । लक्ष्मण सोये हुए पुरुष की तरह उठ बैठे । जो वानर युद्ध में मारे गये थे, उनकी भी सुषेण ने मलहम पट्टी कर, उन्हें पुनर्जीवित कर दिया । अब तो श्रीरामचन्द्र जी के शिविर में चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया । आनन्द में भर वानर उच्च स्वर से गरजने लगे ।

इकतीसवाँ अध्याय ।

रामचन्द्र के लिये इन्द्र का रथ भेजना ।

वानरों की आनन्द-ध्वनि रावण न सुन सका । वह तुरन्त ही रथ पर चढ़ फिर रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ और वानरों के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा । दोनों

ओर से घोर युद्ध होने लगा। कुछ देर तक दोनों वीरों को अपने अपने विजय में सन्देह बना रहा। कौतूहल-प्रिय देवगण भी आकाश में खड़े राम रावण के युद्ध को देख रहे थे। इन्द्र ने देखा कि श्रीरामचन्द्र पैदल लड़ रहे हैं और उनका प्रतिद्वन्द्वी रावण रथ पर सवार हो कर लड़ रहा है। तब उन्होंने अपनी सवारी का रथ, मातलि सारथी के साथ भेज दिया। प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्र जी उस पर सवार हो लड़ने लगे। अन्त में श्रीराम ने रावण के ऊपर बड़ी तेज़ी से असंख्य बाण चलाये। रावण मूर्च्छित हो रथ के भीतर गिर पड़ा। यह देख उसका सारथी रथ भगा कर लंका के भीतर चला गया।

अगस्त्य के बतलाये हुए आदित्य-हृदय का श्रीरामचन्द्र द्वारा पाठ किया जाना।

उधर रघुकुल के हितैषी महर्षि अगस्त्य युद्धक्षेत्र में पहुँचे और श्रीरामचन्द्र को संकल्प कर तथा शुद्धचित्त से आचमन कर शत्रुनाशकारी आदित्यहृदय का पाठ करने को कहा। उसका पाठ करते ही श्रीरामचन्द्र जी आदित्य सदृश महातेज से परिपूर्ण हो कर लड़ने को तैयार हुए, वानरसेना ने "श्रीरामचन्द्र की जय" के चीत्कार से लंकापुरी को हिला दिया। राक्षस डर कर अपने घरों में घुस गये। इतने में रावण की मूर्च्छा दूर हुई। अपने को पुरी में देख रावण अपने सारथि पर बहुत बिगड़ा और उसे गालियाँ भी दीं। तदनन्तर वह फिर युद्धक्षेत्र में लड़ने के लिये आया।

रावण का अन्तिमयुद्ध।

रावण को देख मातलि ने अपना रथ उसके सामने

मा हटाया । दोनों में फिर युद्ध होने लगा । दोनों वीर अपने अपने दिव्य अस्त्रों से एक दूसरे को चकित एवं स्तम्भित करने लगे । राम, रावण के चलाये अस्त्रों को बीच ही में काट कर फेंक देते थे और रावण भी ऐसा ही करता था, किन्तु अस्त्र दोनों के कवच को फोड़ कर दोनों के शरीर में घुस जाते थे। इन अस्त्रों के आघात से दोनों ही वीरों का शरीर रक्त से रंग गया था । तिस पर भी दोनों समान बल से लड़ते रहे ।

सिर काटने पर भी रावण के पुनः सिर निकलना।

एक बार अवकाश पा कर श्रीरामचन्द्र ने दिव्यास्त्र चला कर, रावण का सिर काट गिराया । उसके कटते ही झट दूसरा निकल आया । एक दो बार नहीं—सौ बार ऐसा ही हुआ । इस प्रकार जब बहुत देर लड़ते लड़ते हो गयी, तब मातलि के कहने से आत्मविस्मृत श्रीरामचन्द्र ने धनुष पर ब्रह्मास्त्र रखा । उसके धनुष पर रखते ही चारों ओर प्रकाश हो गया । यह देख रावण ने उसको रोकने के लिये अपने अच्छे अच्छे अस्त्र चलाये पर वे सबके सब उसके तेज से भस्म हो गये । वह ब्रह्मास्त्र तड़ाक से रावण की छाती को फोड़ पृथिवी में घुस गया ।

रावण का मारा जाना।

श्रीरामचन्द्र की सेना में आनन्द ।

रावण के मारे जाने पर पृथिवी धीरे धीरे हिली और समुद्र उछला । देवता आनन्द में भर पुष्पों की वृष्टि करने लगे। मृदु मन्द बयारि चलने लगी। लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव ने प्रसन्न हो श्रीरामचन्द्र को

हृदय से लगाया। बन्दर भी आपस में एक दूसरे को गले से लगा कर उछल कूद मचाने लगे। हाहाकार करते हुए राक्षसों को भागते देख वानर उनको पछियाने लगे। तब बहुतसे तो वानरों के हाथ जोड़ और पैरों पड़ बच गये—और जिन्होंने ऐसा न किया—वे वानरों द्वारा मार डाले गये।

रावण की अन्त्येष्टि-क्रिया।

पापों के फल से रावण का वंश सहित नाश हुआ। इस समय विभीषण के खून ने भी जोश खाया। भाई के शव को देख वह भी दुःखी हुआ। रावण की पटरानी मन्दोदरी तथा अन्य रानियाँ हाहाकार करती आयीं और रावण के शव के चारों ओर बैठ विलाप करने लगीं। उनके विलाप को सुन सब सुनने वालों के हृदय पसीज उठे। कुछ देर बाद श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को समझा बुझा कर शान्त किया और रावण की विधवाओं को समझा बुझा कर शान्त करने की आज्ञा दी। विभीषण ने उन्हें शान्त किया और जैसा राजाओं का होना चाहिये, वैसा ही रावण के मृतशरीर को समुद्र तट पर ले जा कर, उसका अन्तिम सत्कार किया।

बत्तीसवाँ अध्याय।

सीता को शुभ संवाद सुनाना।

इसके बाद श्रीरामचन्द्र के आदेश से शीघ्रगामी वानर चारों समुद्रों का जल ले आये। तब श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण का अभिषेक कर, उन्हें लंका के राजसिंहासन

पर बिठाया। यह देख सब वानर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अभिषेक का काम पूरा कर श्रीरामचन्द्र ने, सर्व-कार्य-सिद्धिकारी हनुमान को सीता जी के पास भेज कर उनके हरने वाले रावण के मारे जाने का सुख-संवाद भेजा। हनुमान् जी ने तुरन्त यह संवाद सीता जी को जा सुनाया, जिसे सुन मारे आनन्द के सीता जी कुछ क्षण तक तो बेसुध हो गयीं और उनके मुख से एक अक्षर भी न निकला। फिर आनन्द में भर सीता जी ने हनुमान् को अनेक आशीर्वाद दिये और स्वामी के दर्शन करने की विकलता प्रकट की। तब हनुमान् ने उनको कुछ देर ठहरने के लिये कहा और स्वयं तुरन्त लौटे और श्रीरामचन्द्र के सामने सीता जी की इच्छा प्रकट की।

सीता का स्वामी के पास जाना।

हनुमान् के मुख से सीता की इच्छा सुन उदास हो श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को आज्ञा दी कि वे जा कर सीता को ले आवें। तदनुसार विभीषण, सीता जी को स्नान करा महामूल्य, वस्त्रालङ्कार से सजा और रेशमी कपड़े से ढकी पालकी में बिठा, श्रीरामचन्द्र जी के पास ले गये और वहाँ से वे सब वानरों को हटाने लगे। यह देख श्रीरामचन्द्र ने कहा—विवाह, व्यसन, स्वयम्वर, यज्ञ और युद्ध के समय स्त्रियों को पर्दा न करना चाहिये। अतः ऐसा न करने के लिये श्रीरामचन्द्र ने विभीषण को झिड़का भी, यह सुनते ही सीता जी के मन में उसी समय सन्देह उत्पन्न हुआ और वे पालकी छोड़ पैदल चल

सब के सामने श्रीरामचन्द्र जी के चरणों पर गिर पड़ीं।

श्रीरामचन्द्र जी कुछ देर तक चुपचाप रह कर कुछ विचारते हुए से जान पड़े। तदनन्तर उन्होंने राक्षस के घर में रहने के कारण दूषित जानकी को ग्रहण करना अस्वीकृत किया। स्त्री को ले कर भागने वाले को समुचित दण्ड देना उनका धर्म था—यह उन्होंने पूरा किया। किन्तु विना परीक्षा के उस स्त्री को ग्रहण करना अनुचित है ऐसा विचार कर सीता को उन्होंने लौटा दिया।

श्रीरामचन्द्र द्वारा सीता जी का लौटाया जाना।

पति के ऐसे व्यवहार से मर्माहता पतिव्रता सीता देवी असंकुचित चित्त से स्वामी के सामने अग्नि में प्रवेश करने को उद्यत हुईं और पास ही खड़े देवर लक्ष्मण से उसी क्षण चिता तैयार करने को कहा। अनन्योपाय लक्ष्मण ने तुरन्त चिता बना कर उसे जला दिया। देखते देखते अग्निशिखा बहुत ऊँची उठने लगी और चारों ओर प्रकाश कर दिया। सीता ने भी अपने पति और अग्नि की परिक्रमा की और वे निडर हो जलती हुई आग में घुस गयीं। यह देख लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् और उपस्थित अन्यान्य वानर एवं राक्षस हाय हाय कर रोने लगे।

सीता का अग्निप्रवेश।

सीता देवी के सतीत्व की परीक्षा देखने के लिये देवता, ऋषि, और पितृगण आकाश में खड़े हुए थे। कुछ देर बाद सब लोगों ने देखा कि सीता देवी का एक

अग्निपरीक्षा के बाद सीता देवी का श्रीरामचन्द्र द्वारा पुनर्ग्रहण।

रोम भी अग्नि में नहीं जला । तब तो देवता, ऋषि, पितृ सभी सीता देवी को निष्कलङ्का निष्पापा बतला—उन्हें पुनर्ग्रहण करने के लिये श्रीराम जी से अनुरोध करने लगे । सीता जी गले में जो फूलों की माला पहने हुए थीं उसके फूल तक न मुरझाये । यह देख वानर और राक्षस केवल विस्मित ही न हुए किन्तु आनन्द-ध्वनि करने लगे ।

इन्द्र के वरसे मरे हुए वानरों का फिर जीना ।

देवता और महर्षिगण दूरदर्शी श्रीरामचन्द्र और पतिव्रता सीता के आचरण को देख बहुत प्रसन्न हुए और उन दोनों को अनेक आशीर्वाद दिये । श्रीरघुनाथ जी के कहने से और इन्द्र के वरदान से जो वानर उस युद्ध में मरे पड़े थे, वे सब जीवित हो गये । महाराज दशरथ अपने दोनों पुत्रों और पुत्रवधू को देख बहुत प्रसन्न हुए । तब श्रीरामचन्द्र ने अनुरोध किया कि वे कैकेयी को क्षमा कर दें । उन्होंने वैसाही किया । अन्त में उन्होंने श्रीरामचन्द्र और सीता की प्रशंसा की और चौदहवर्ष पूरे हुए कह अयोध्या जा कर वहाँ का राज्यग्रहण करने की उन्हें आज्ञा दे—वे सब अपने अपने स्थानों को चले गये ।

श्रीरामचन्द्र जी की अयोध्या जाने की तैयारियाँ ।

इसके बाद उच्छृङ्खल लंकापुरी का समुचित प्रबन्ध कर विभीषण ने पुरी के भीतर चलने का श्रीरामचन्द्र जी से अनुरोध किया । किन्तु वनवास की अवधि में अभी कुछ कसर थी—अतः वे पुरी में न गये । साथ ही विभीषण से कहा कि वे उनके अयोध्या शीघ्र पहुँचने की शीघ्र तैयारी कर दें । इस पर विभीषण ने कामचारी पुष्पक

विमान में श्रीरामचन्द्र जी को उनके साथियों सहित बैठा और स्वयं उसमें बैठ शीघ्र अयोध्या जाने का प्रबन्ध किया। यथासमय सब लोग पुष्पक में बैठ लंका स अयोध्या की ओर प्रस्थानित हुए ।

तैंतीसवाँ अध्याय ।

श्रीरामचन्द्र का भरद्वाजाश्रम में पहुँचना ।

देवनिर्मित पुष्पक विमान में श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और राक्षस, वानर बैठ गये और वह वायुवेग की तरह अयोध्या की ओर चला । विमान में बैठ कर प्रसन्नचित्त श्रीरामचन्द्र मार्ग में एक एक कर उन स्थानों को दिखाते तथा वहाँ जो जो घटनाएँ हुई थीं उनका वृत्तान्त सुनाते जाते थे । उन स्थानों को देखती हुई तथा वहाँ की घटनाओं को सुन सीता जी कभी तो हर्षित और कभी विषादित होती थीं । यथासमय पुष्पक विमान किष्किन्धा में पहुँचा । सीता जी के अनुरोध से सुग्रीव की दोनों रानियाँ तथा अन्य वानरों की स्त्रियाँ भी विमान में बैठा ली गयीं और विमान पुनः अयोध्या की ओर चल पड़ा । विचित्र गति वाला वह विमान, अनेक पर्वत, नदी, वन, उपवन तथा प्रदेशों को पार करता अयोध्या के समीप पहुँचा । किन्तु सहसा अयोध्या में जाना नीतिविरुद्ध समझ श्रीरामचन्द्र जी अपनी फौज फाँटा सहित भरद्वाज के आश्रम में उतर पड़े और वहीं से पहले अयोध्या का वृत्तान्त जानना चाहा ।

भरद्वाज द्वारा श्रीराम को अयोध्या जाने की अनुमति मिलना ।

तपःप्रभाव से त्रिकालज्ञ भरद्वाज ऋषि ने चौदह वर्ष बाद वनवासी श्रीराम को भ्राता, स्त्री और उनके संगियों के सहित देखा और अत्यन्त प्रसन्न हुए। बहुत दिनों बाद श्रीरामचन्द्र जी को स्वदेश का कुशल संवाद सुन अति हर्षान्वित और अयोध्या जाने के लिये अत्यन्त उत्सुक देख, भरद्वाज ने उन्हें अयोध्या जाने की अनुमति दी। श्रीरामचन्द्र जी के अयोध्या में प्रवेश करने के समय महर्षि भरद्वाज ने मंगलाचरणस्वरूप, अपने तपोबल से अयोध्या से अपने आश्रम तक की सड़क पर लगे हुए २४ कोस के वृक्षों को पुष्प, मधु और फलों से परिपूर्ण कर दिया था।

हनुमान् का गुह और भरत को श्रीरामचन्द्र के लौटने का संवाद सुनाना ।

भरद्वाज से विदा हो, कुछ ही देर बाद पुष्पक विमान में बैठे हुए लोगों को अयोध्या दिखलायी दी। तब श्रीरामचन्द्र ने अपने लौट कर आने का संवाद गुह और भरत को देने के लिये हनुमान् को भेजा। हनुमान् ने गुह को श्रीरामचन्द्र के आने की सूचना दे परम प्रसन्न किया। तदनन्तर हनुमान् जी तपस्वी का वेश धर भरत के पास गये। अयोध्या से दो मील के अन्तर पर नन्दि-ग्राम में हनुमान् जी भरत जी से मिले। हनुमान् जी ने देखा कि भरत जी राजसिंहासन पर श्रीरामचन्द्र जी की खड़ाउओं को रखे हुए हैं और स्वयं तपस्वी वेश में फल-मूलाहारी हो कर तथा व्रतनिष्ठ हो और राज्य के काम काज की देख भाल कर रहे हैं। हनुमान् के मुख से

पिता के सत्य की रक्षा कर श्रीरामचन्द्र जी के लौटने का संवाद सुन, भरत जी के आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने इस सुख-संवाद को सुनाने वाले हनुमान् जी का बड़ा आदर सत्कार किया और नगरनिवासियों के नाम आज्ञा निकाली कि वे आनन्दसूचक वन्दनवार, ध्वजा, पताका आदि से नगर को मंगलमय बनावें। फिर राजकर्मचारियों को श्रीरामचन्द्र जी के जलूस को सजाने की आज्ञा दी और अगले दिन पुष्य नक्षत्र में शत्रुघ्न, तथा अपनी माताओं सहित श्रीरामचन्द्र जी का स्वागत करने के लिये वे वहाँ से आगे बढ़े। नगर को सजा और स्वागत के लिये पुष्प लाजा, बताशे साथ में ले पुरवासी भी भरत के पीछे हो लिये।

श्रीरामचन्द्र का माताओं सहित भरत से मिलना।

थोड़ी ही दूर आगे जाने पर भरत ने श्रीरामचन्द्र को पुष्पक विमान में बैठा देख और देखते ही उन्हें बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम किया। इतने में पुष्पक विमान भी पृथिवी पर उतरा और सब आपस में एक दूसरे से मिलने लगे। उस समय चौदह वर्ष के बिछुड़े हुए भाइयों के परस्पर-मिलन-दृश्य का वर्णन करना हमारी निर्जीव लेखनी की शक्ति के बाहिर है। उस समय तो आनन्द की लहरें उस जनसमुदाय में उमड़ी पड़ती थीं। बहुत दिनों बाद श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और जानकी को गोद में बिठा, महारानी कौशल्या तथा अन्य रानियों ने आनन्द के आँसुओं से उनको स्नान कराये। कुछ देर के

लिये लोग अपने को भूल गये—उस आनन्द के अवसर में लोगों को यहाँ तक सुध न रही कि हम कौन हैं और कहाँ हैं ? कुछ देर बाद जब लोग आपे में आये तब श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के जटा चीरवल्कल परित्याग करवाये गये और वे बहुमूल्य वस्त्रालंकार से सजाये गये । तदनन्तर नगरप्रवेश की तैयारी हुई ।

श्रीरामचन्द्र का अयोध्या-प्रवेश ।

तब रावणविजयी श्रीरामचन्द्र ने बड़े आदर के साथ, पुष्पक विमान को यक्षराज कुवेर के पास लौटा दिया । क्योंकि यह उन्हींका था और रावण ने ज़बरदस्ती उनसे उसे छीन लिया था । भरत के प्रबन्धानुसार श्रीरामचन्द्र जी ने अपने परिवारवर्ग के साथ वृद्ध सारथी के लाये रथ में बैठ और शुभ मुहूर्त में अयोध्यापुरी में प्रवेश किया।

श्रीरामचन्द्र का राज्याभिषेक ।

नगर में पहुँच और राजभवन में श्रीरामचन्द्र जी को उनके परिवारवर्ग सहित पहुँचा अब पुरवासी श्रीरामचन्द्र जी के राज्याभिषेक के लिये उत्सुक हुए । महर्षि वशिष्ट ने अभिषेक के लिये जो शुभ दिन निर्धारित किया, उसके पूर्व ही हनुमान् आदि शीघ्रगामी वानर सुवर्ण के घड़ों में चारों समुद्रों और पाँच सौ नदियों के जल तथा अन्य आवश्यक वस्तुवें ले आये । गुरु और पुरोहितों ने, शुभ मुहूर्त तथा पुरवासियों की आनन्द-ध्वनि के बीच सीता सहित श्रीरामचन्द्र को राजसिंहासन पर विधिपूर्वक बिठाया। असंख्य बाजों के बजने से तथा वानरों और राक्षसों तथा पुरवासियों के द्वारा उच्चारित "राजा रामचन्द्र की

जय" के नाद से आकाश परिपूर्ण हो गया। अयोध्या के प्रत्येक घर में आनन्द बधाई बजने लगीं।

याचक, ब्राह्मण और भिखारी आशातीत धन पा कर और हाथ उठा उठा कर, श्रीरामचन्द्र जी को आशीर्वाद देने लगे। राक्षसों और वानरों को भी बहुतसा पुरस्कार दिया गया। श्रीजानकी जी ने अभिषेक के समय बहुमूल्य रत्नहार धारण किया था—उसे उन्होंने अपने गले से उतार, हनुमान् जी के गले में डाल दिया। यह देख राक्षस वानर सभी बहुत प्रसन्न हुए और सीता जी को असंख्य धन्यवाद दिये।

चौंतीसवाँ अध्याय।

अगस्त्य आदि मुनियों द्वारा श्रीरामचन्द्र की प्रशंसा।

यह नियम है कि जब कोई नया राजा राजसिंहासन पर बैठता है, तब भिन्न भिन्न जाति, सम्प्रदाय एवं समाज की प्रजा के प्रतिनिधियों का प्रतिनिधि दल (डेप्यूटेशन) नये राजा की अभ्यर्थना के लिये उपस्थित होता है। इसी नियमानुसार, सबसे पहले वनवासी वे ऋषिगण अगस्त्य को अपना अगुआ बना—श्रीरामचन्द्र जी के निकट गये। जिनके असीम कष्टों को श्रीरामचन्द्र जी ने राक्षसों को मार कर मिटाया था। श्रीरामचन्द्र जीने इन ऋषियों का उनकी पद मर्यादा के अनुसार सत्कार किया और उनको आसनों पर बिठाया। इनके नेता अगस्त्य मुनि ने सब से पहले श्रीरामचन्द्र को, परिवार सहित—

विशेष कर मेघनाद सहित रावण का वध करने के लिये बधाई दी । साथ ही प्रसङ्गवश उन्होंने रावण की दिग्विजय का तथा सुग्रीवादि वानरों के जन्म का विस्तारपूर्वक वृत्तान्त कहा । महर्षि अगस्त्य अन्त में श्रीरामचन्द्र को अनेक आशीर्वाद दे विदा हुए ।

विदाई । ऋषियों के इस प्रतिनिधि दल को यथाविधि विदा कर, श्रीरामचन्द्र जी ने अच्छे प्रकार सम्मानित कर कपिराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण को विदा किया । जितने वानर और राक्षस अयोध्या आये थे वे श्रीरामचन्द्र जी के व्यवहार से बहुत प्रसन्न हो अपने अपने निवासस्थानों को चले गये । राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में प्रजा के नेताओं को भी सम्मानसूचक व्यवहार से सन्तुष्ट कर श्रीरामचन्द्र ने बिदा किया । श्रीरामचन्द्र की इच्छा थी कि वन में साथ रहने वाले और अनेक कष्ट सह कर सेवा करने वाले लक्ष्मण को युवराज पद पर अभिषिक्त करें । किन्तु जब स्वयं लक्ष्मण ने युवराज होना अस्वीकार किया तब उस पद पर भरत जी अभिषिक्त किये गये ।

श्रीरामचन्द्र ने दस हज़ार वर्ष तक राज्य किया । उनके इस सुदीर्घ शासनकाल में, उनके राज्य में बसने वाला कोई भी पुरुष दुःखी न होने पाया और यदि कोई हुआ भी और उसने अपने दुःख का वृत्तान्त उनके कान तक पहुँचाया तो उसका दुःख उन्होंने तुरन्त मेट भी दिया । सुशासन के अतिरिक्त श्रीरामचन्द्र की प्रकृति यज्ञभागादि

कर्म्मानुष्ठानों की ओर विशेष रूप से थी । राजा के पुण्य कर्मों से प्रजा सुखी और राजा के पापकर्मों से प्रजा दुःखी रहती है । महाराज श्रीरामचन्द्र की प्रवृत्ति धर्म की ओर होने से न तो उनके राजत्व काल में कभी अकाल पड़ा, न संक्रामक बीमारियों के अड्डे जमे और न कोई निर्धन हो दाने दाने को मोहताज हुआ । प्रत्युत उनके शासनकाल में समय पर जल बरसता था—फसलें ठीक होती थीं—लोग नीरोग और हृष्ट पुष्ट होते थे । चोर बदमाशों का नाम तक न था । सब स्त्रियाँ पतिव्रता और सुहागिनें थीं । बड़ों के रहते छोटे नहीं मरते थे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने अपने वर्णोचित कर्त्तव्यों का पालन किया करते थे । नगर और राष्ट्र धन धान्य से भरे पूरे थे । प्रजा श्रीरामचन्द्र को अपना पिता समझ उनमें श्रद्धा करती थी और उन्हें अपने प्राणों से अधिक मानती थी।

पुष्पकविमान का पुनः आगमन ।

राजगद्दी पर बैठे श्रीरामचन्द्र को बहुत दिन नहीं हुए थे कि एक दिन पुष्पक विमान फिर अयोध्या में आया और आकाश में खड़ा हुआ । उसके अधिष्ठाता ने श्रीरामचन्द्र जी से विनयपूर्वक निवेदन किया कि यक्षराज कुबेर ने यह विमान आपकी सवारी के लिये आपको अर्पण किया है । यह सुन श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न हुए और उससे कहा—"अच्छी बात है—तुम अभी यक्षराज ही के पास लौट जाओ । हमें जब तुम्हारी आवश्यकता पड़े, तब तुम स्मरण करते ही, आ जाना"।

पैंतीसवाँ अध्याय।

सीता की तपोवन देखने की इच्छा।

श्रीरामचन्द्र जी अयोध्या राज्य के अधिपति अवश्य थे, किन्तु राज्य का सारा काम काज करते भरत ही थे। विशेष विशेष मामलों में युवराज भरत, अयोध्यापति से आज्ञा ले लिया करते थे। श्रीरामचन्द्र जी प्रजा का शृङ्खलाबद्ध शासन देख बहुत प्रसन्न रहते थे। श्रीरामचन्द्र जी ने अपने भवन के पास सुरम्य वृक्ष, तड़ाग और हर्म्यादि सुशोभित अशोककानन में अनेक उपभोग्य वस्तुओं द्वारा सीता जी को सन्तुष्ट कर, शिशिर काल व्यतीत किया। इतने में उनको जानकी के गर्भवती होने के लक्षण दीख पड़े। गर्भवती स्त्री की इच्छा पूरी करने से गर्भजात सन्तान वलिष्ट, मेधावी और विचारवान् उत्पन्न होता है। अतः श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी से पूँछा कि उनकी रुचि किस वस्तु पर है। उत्तर में जानकी जी ने अपनी रुचि तपोवन देखने में बतलायी।

लोकापवाद के भय से सीता का निर्वासन।

एक दिन रामचन्द्र जी गुप्तचर (Detective) विभाग के कर्मचारियों से बातचीत कर अपने बारे में प्रजा के लोगों की राय सुन रहे थे। दुर्मुख नाम का एक गुप्तचर था। जब उसकी बारी आयी, तब उसने बड़े आडम्बर के साथ हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि राक्षस द्वारा हरी गयी सीता का, आपके द्वारा पुनः ग्रहण किये

जाने की कुछ लोग निन्दा करते हैं। यह सुन श्रीरामचन्द्र जी खिन्न हुए और उन सबको बाहिर जाने की आज्ञा दे—अपने तीनों भाइयों को उन्होंने बुलाया। तुरन्त तीनों उपस्थित हुए, किन्तु श्रीरामचन्द्र की भावभङ्गी देख वे ताड़ गये कि कोई अनर्थ होने वाला है। उन तीनों के बैठ जाने पर दुःखी श्रीरामचन्द्र ने उनसे दुर्मुख से सुनी हुई बात कही। अन्त में मिथ्या लोकापवाद के डर से श्रीरामचन्द्र जी ने निरपराधा सीता के त्यागने का संकल्प प्रकट किया।

सीता का वनवास।

तीनों भाई यह जानते थे कि श्रीरामचन्द्र जी जो बात एक बार कह देते हैं—उसे बदलते नहीं। अतः उनके इस निदारुण संकल्प की बात सुन तीनों भाई, अन्य उपाय न देख, चुप हो गये और कुछ न बोले। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उस निस्तब्धता को भंग कर लक्ष्मण जी से कहा कि जानकी जी उनसे तपोवन देखने की इच्छा प्रकाश कर चुकी हैं, अतः तुम जा कर उन्हें वन में छोड़ आओ। लक्ष्मण ने आज तक कभी बड़े भाई का कहना नहीं टाला था—अतः इस बार का कहना वे क्यों टालते। लक्ष्मण ने बड़े यत्न से अपने मन को रोका और सीता

१—(मतान्तरे) कहा जाता है एक सन्दिग्धचरित्रा अपनी धोबिन को एक धोबी ने ताना दिया था कि मैं राम नहीं हूँ कि राक्षस के घर में रही सीता को घर में रखूँ।

को रथ में बिठा तपोवन की ओर चल दिये। बहुत दूर आने पर वे गंगा के तट पर पहुँचे और गंगा के पार जा-तपोवन के पास ले जा कर सीता जी को छोड़ा और चलते समय मूर्च्छितप्राय लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र जी की कठोर आज्ञा उनको सुनायी। जिसे सुन पतिगतप्राणा जानकी जी वज्राहत वृक्ष की तरह पृथिवी पर गिर पड़ीं।

निर्वासिता सीता का वाल्मीकि के आश्रम में रहना।

बहुत यत्न करने पर सीता जी सचेत हुईं। उस समय रोती हुई सीता को किसी प्रकार धीरज धरा लक्ष्मण जी ने उन्हें वहाँ से अति समीप महर्षि वाल्मीकि के आश्रम[1] में जा कर रहने का परामर्श दिया। तदनन्तर मन को कड़ा कर लक्ष्मण नाव पर बैठ इस पार चले आये और तुरन्त रथ में बैठ अयोध्या की ओर प्रस्थानित हुए। सीता को बैठ कर वहाँ रोते बहुत देर नहीं हुई थी कि ऋषिबालकों के मुख से किसी स्त्री के रोने का वृत्तान्त सुन महर्षि वाल्मीकि स्वयं सीता जी के पास गये और उन्हें आदरपूर्वक अपने आश्रम में लिवा ले गये और मुनिपत्नियों के पास उन्हें ठहराया।

लक्ष्मण का [illegible]ना।

लक्ष्मण जी के बुद्धिमान् सारथी ने उनको अनेक प्रकार से समझा बुझा कर शान्त किया। यथासमय लक्ष्मण

१—वाल्मीकि का आश्रम चित्रकूट पर्वत पर था। पर किसी किसी का मत है कि Somewhere in Bundelkhand (मतान्तरे) near modern Dinapur. पर बिठूर (ब्रह्मावर्त) में वाल्मीकि की कुटिया और सीता जी के रहने के स्थान का स्मारक अभी वर्तमान है।

अयोध्या पहुँचे और बड़े भाई के मुख से विविधविषयिणी शास्त्रचर्चा सुन अपने मन को बहलाया। श्रीरामचन्द्र जी ऐसे संपत्तचित्त के थे कि वे इस शोकप्रद घटना के कारण तिल भर भी अपने कर्त्तव्य से विचलित न हुए और पूर्ववत् शासन करते रहे।

विचार-प्रार्थी कुत्ता। फौजदारी का मुकद्दमा।

इस बीच में एक दिन श्रीरामचन्द्र जी के पास एक विचार-प्रार्थी कुत्ता आया और उसने एक ब्राह्मण की शिकायत की जिसने उसे अकारण मारा था। श्रीरामचन्द्र की आज्ञा से वह ब्राह्मण न्यायालय में उपस्थित किया गया। उसने अपना अपराध स्वीकार किया। तब श्रीरामचन्द्र जी ने मंत्रियों से परामर्श किया कि अपराधी ब्राह्मण को क्या दण्ड दिया जाय। इस पर उस कुत्ते ने विनयपूर्वक कहा कि अपराधी ब्राह्मण कालञ्जर के शिवालय का महन्त बना दिया जाय। इस दण्डविधान के अनुसार वह अपराधी ब्राह्मण जब हाथी पर सवार हो कालञ्जर की ओर चला तब सभास्थ सदस्यों ने उस कुत्ते ही से ऐसी अप्रासङ्गिक प्रार्थना का रहस्य पूँछा। तब उसने अपने पूर्वजन्म का हाल कहते हुए अपने को कालञ्जर के शिवालय का महन्त बतलाया और कहा कि अनजाने शिव जी के दीपक का घृत उसके नाखून में लग गया था और भोजन करते समय वही घृत उसके पेट में चला गया। इस पाप के फल से उसे कुत्ते की योनि में जन्म लेना पड़ा। कुत्ते के

मुख से यह वृत्तान्त सुन सब लोग चकित हुए ।

एक दीवानी का मुकद्दमा ।

फौजदारी के एक मुकद्दमे का फैसला हम दिखला चुके अब दीवानी के एक मुकद्दमे का वृत्तान्त लिखा जाता है। एक दिन एक गीध और एक उल्लू ने आ कर श्रीरामचन्द्र जी के राजदर्बार में न्याय के लिये प्रार्थना की। गीध का दावा था कि उस स्थान पर जिस पर उल्लू अब अपना अधिकार बतलाता है—उस पर उसका अधिकार उस समय से है, जिस समय से पृथिवी पर मनुष्य उत्पन्न हुए। उल्लू ने कहा कि वह उसका अधिकार उस वृक्ष पर उस समय से है, जबसे वृक्ष उत्पन्न हुए। दोनों की बातें सुन श्रीरामचन्द्र जी ने गीध का दावा डिसमिस कर उल्लू को डिग्री दी। साथ ही अनधिकार अधिकार के लिये गीध को वे दण्ड देने को प्रस्तुत हुए। उस समय आकाशवाणी हुई कि असल में गीध, गीध नहीं—बल्कि पूर्व जन्म का वह ब्रह्मदत्त नामक राजा है। एक बार भूखे गौतम के भोजनों के पदार्थों में इसने मांस परोसा था। अतः उनके शाप से इसे गीध होना पड़ा। वह शाप से मुक्त तब होगा जब श्रीरामचन्द्र जी उसे अपने हाथ से छू देंगे। सो श्रीरामचन्द्र के हाथ लगाते ही वह गीध की योनि से छुटकारा पा गया।

छत्तीसवाँ अध्याय ।

लवणासुर-वध

जब दण्डकारण्यवासी ऋषियों का कष्ट श्रीरामचन्द्र

जी ने दूर कर दिया और यह बात दूर दूर तक फैली, तब लवणासुर के अत्याचारों से प्रपीडित यमुनातटवासी अनेक ऋषियों का एक प्रतिनिधि दल महर्षि भार्गव और च्यवन के आधिपत्य में श्रीरामचन्द्र जी के पास पहुँचा। इस प्रतिनिधि दल के नेताओं ने लवणासुर के अत्याचारों को विशदरूप से वर्णन करते हुए उसके विनष्ट किये जाने का अनुरोध किया। साथ ही ऋषिप्रवरों ने यह भी कहा कि लवणासुर, मधुनामक दैत्य का पुत्र है। जिसने महादेव जी को प्रसन्न कर दो पीढ़ियों के लिये उनसे एक अमोघ त्रिशूल पाया है और उसी त्रिशूल के भरोसे वह सारे संसार को तुच्छ समझता है। उन ऋषियों के मुख से सारा वृत्तान्त सुन श्रीरामचन्द्र जी ने लवणासुर के मारने का काम शत्रुघ्न को सौंपा और इस काम में सहायता देने के लिये एक बड़ी फौज भी उनके साथ कर दी।

के लिये शत्रुघ्न का प्रस्थान।

जिस समय शत्रुघ्न चलने लगे उस समय श्रीरामचन्द्र जी ने उनको समझा दिया कि वे लवण पर ऐसे समय आक्रमण करें जब उसके हाथ में त्रिशूल न हो और न वे उसे त्रिशूल लाने का अवसर ही दें। जब लवणासुर को वे मार चुकें तब उस प्रदेश में एक स्वतंत्र साम्राज्य भी स्थापित करें। बड़े भाइयों को प्रणाम कर और उनसे आशीर्वाद ले, शत्रुघ्न सेना सहित अयोध्या से चले। रास्ते में उन्हें वाल्मीकि का आश्रम मिला। महर्षि ने उनका बहुत अच्छी तरह सत्कार किया और इसलिये वे उस

सीता के गर्भसे दो राजकुमारों का जन्म।

आश्रम में एक रात्रि रहे। दैवयोग से उसी रात में सीता के गर्भ से दो सुन्दर बालक उत्पन्न हुए। यह सुख-संवाद सुन कर शत्रुघ्न बहुत प्रसन्न हुए और इसे उन्होंने अपने भावी शत्रु विजय का पूर्व चिह्न समझा। अगले दिन सवेरे वे महर्षि से मिले जिन्होंने उनके दिग्विजयी सूर्य-वंशोद्भव महाराज मान्धाता के लवण द्वारा मारे जाने का वृत्तान्त सुनाया। महर्षि ने यह भी उनको समझा दिया कि लवण त्रिशूल अपने घर में रखता है और वह सवेरे शिकार मारने जाता तथा दोपहर को लौटता है। उस समय उसके हाथ में त्रिशूल नहीं रहता, अतः उसके मारने का वही उपयुक्त समय है। महर्षि से ऐसे महत्त्व की बात सुन और उसे ध्यान में रख, शत्रुघ्न वहाँ से चल दिये।

लवण-वध।

चलते चलते शत्रुघ्न मथुरा पहुँचे और जिस समय वह शिकार के लिये गया हुआ था, उसी समय वे उसक पुर के द्वारों को रोक उसके आने की प्रतीक्षा करने लगे। दोपहर के समय वह राक्षस मारे हुए जानवरों को पीठ पर लादे आता हुआ दीख पड़ा। उसी समय शत्रुघ्न ने उसे युद्ध के लिये ललकारा और नगर के भीतर न जाने दिया। तब तो वह क्रोध में भर पास के वृक्षों को उखाड़ उनसे शस्त्र का काम लेने लगा। शत्रुघ्न ने उसके फेंके सब वृक्षों को बाणों से टुकड़े टुकड़े कर डाला। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी के दिये हुए दिव्य बाण से लवणासुर को मार डाला।

लवणासुर को मार शत्रुघ्न ने वहाँ पर मथुरा नाम की एक अति रमणीय सुन्दर पुरी यमुना के तट पर बसायी और उसे अपनी राजधानी बना वे वहाँ राज्य करने लगे। बारह वर्ष तक शत्रुघ्न ने बड़ी योग्यता से और दृढ़ता से राज्य किया । तदनन्तर वे अपने बड़े भाई से मिलने के लिये अयोध्या गये । रास्ते में वे फिर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे । इस बार उन्होंने उन बालकों के मधुर कण्ठ से तान और लय से मिला हुआ रामचरित्र का गान सुना । उसे सुन वे विस्मित हुए और साथ ही चिन्तित भी वहाँ से चल वे अयोध्या पहुँचे । श्रीरामचन्द्र जी ने उनसे उनके नव स्थापित साम्राज्य का सारा हाल सुना और सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुए। श्रीरामचन्द्र जी ने उन्हें एक सप्ताह तक अपने पास रखा, फिर नव स्थापित साम्राज्य के शासन में विघ्न उपस्थित होने के डर से शत्रुघ्न को पुनः मथुरा भेजा ।

मथुरा का बसाया जाः

तदनन्तर एक दिन एक ब्राह्मण ने आ कर राजद्वार पर धरना दिया और अपने मरे हुए पुत्र की लोथ को ड्योढ़ी पर रख वह विलाप कर कर के राज्यशासन की निन्दा करने लगा । वह कहता कि राज्य में अनाचार हुए बिना ऐसी दुर्घटना हो ही नहीं सकती । प्रजारञ्जक श्रीरामचन्द्र उस ब्राह्मण के आक्षेप युक्त वाक्यों को सुन चकराये और सभा में बैठे हुए ऋषियों से ब्राह्मण-कुमार की असामयिक मृत्यु का कारण पूँछा । तब देवर्षि नारद

ब्राह्मण-पुत्र की अकाल-मृत्यु ।

ने बतलाया कि उनके राज्य में कोई अनधिकारी शूद्र तप करता है—इसीसे ब्राह्मण-कुमार की मृत्यु हुई है।

शूद्र तपस्वी को वध करने से मृत ब्राह्मण-कुमार का जी उठना।

नारद जी की बात सुन श्रीरामचन्द्र जी विस्मित हुए और मृत ब्राह्मण-कुमार के शव को यत्नपूर्वक रखवा इच्छानुसार चलने वाले पुष्पक विमान को स्मरण किया। स्मरण करते ही पुष्पक आ गया। उसमें बैठ वे उस शूद्र को ढूँढ़ने लगे। पूर्व, पश्चिम, और उत्तर दिशाएँ भली भाँति ढूँढ़ी, पर उन्हें कोई तपस्वी शूद्र न मिला। अन्त में वे दक्षिण की ओर गये। वहाँ एक पर्वत की तलहटी के एक तालाब के तट पर, लगे वृक्ष की डाली में रस्सी बाँध और उसके सहारे नीचे को मुख कर लटकते हुए एक शूद्र तपस्वी को उन्होंने देखा। उसे देख श्रीरामचन्द्र जी को उस पर सन्देह हुआ और अपना सन्देह दूर करने के लिये वे उसके पास गये और उससे उसका वर्ण तथा तप करने का उद्देश्य पूँछा। उत्तर में उसने अपने को शूद्र बतलाया और कहा मैं देवलोक जीत कर इसी देह से स्वर्ग जाने के लिये तप कर रहा हूँ। यह सुनते ही श्रीरामचन्द्र जी ने तुरन्त उस शूद्र का सिर तलवार द्वारा शरीर से अलग कर दिया। आकाश में खड़े देवताओं ने श्रीरामचन्द्र जी के इस कार्य की बड़ी प्रशंसा की—क्योंकि उनका एक बड़ा कण्टक दूर हुआ। साथ ही देवताओं ने अयोध्यापुरी के उस ब्राह्मण के मृत बालक को भी जिला दिया जो श्रीरामचन्द्र जी के द्वार पर धरना दिये पड़ा था।

इसके बाद देवसमूहपरिवृत श्रीरामचन्द्र जी ब्रह्मर्षि अगस्त्य के आश्रम में गये। वहाँ यथोचित अभ्यर्थना करने के बाद ब्रह्मर्षि अगस्त्य ने उनको विदर्भ देश के एक राजा का उपाख्यान सुनाया। इस राजा ने बड़ी तपस्या की थी, किन्तु दान एक तिल का भी नहीं किया था और स्वयं ही अपना पेट भरा था। इस पाप के कारण उसे अपना शव खाने के लिये एक सरोवर के तट पर आना पड़ता था। जब वह चला जाता तब वह खाया हुआ शव फिर ज्यों का त्यों हो जाता था। अन्त में अगस्त्य ने जब उसका उद्धार किया, तब उसने महर्षि अगस्त्य को जो वस्त्र और आभूषण दिये थे—अगस्त्य ने वे इस बार श्रीरामचन्द्र जी को दे दिये। क्योंकि प्राचीनकाल के ऋषि वस्त्रालंकार अपने पास नहीं रखते थे और यदि उन्हें कोई आग्रहपूर्वक दे भी देता तो वे उन्हें किसीको दे डाला करते थे।

अगस्त्य द्वारा श्रीरामचन्द्र जी को वस्त्राभरण दिया जाना।

सैंतीसवाँ अध्याय।

दूसरे दिन श्रीरामचन्द्र जी अगस्त्याश्रम से विदा हो अयोध्या में जा पहुँचे। पुष्पक को विदा कर श्रीरामचन्द्र जीने भरत और लक्ष्मण से किसी सर्वपापक्षयकारी धर्म्मानुष्ठान करने का विचार प्रकट किया। भरत और लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र जी को बिल्कुल निष्पाप बतला कर, उनके विचारानुसार अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करने की सलाह दी।

रामचन्द्र जी द्वारा अश्वमेध यज्ञारम्भ।

उनकी सलाह ले श्रीरामचन्द्र जी ने वशिष्ठ, जाबालि आदि से भी सम्मति माँगी । उन्होंने भी अश्वमेध यज्ञ करने की सलाह दी । तब तो इस यज्ञानुष्ठान के लिये श्रीरामचन्द्र जी ने नैमिषारण्य को पसन्द किया और सुग्रीव विभीषण तथा अन्य समीप एवं दूरवर्ती नरेशों को न्योता देने के लिये लक्ष्मण को भेजा । तदनन्तर गोमती के तट पर भोजन आदि की आवश्यक सामग्री एकत्र करने एवं सीता जी की सुवर्णप्रतिमा तैयार किये जाने की आज्ञा दी ।

यज्ञक्षेत्र में लव और कुश का रामायण गाना ।

यथाविधि यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया और उसकी रक्षा करने का भार लक्ष्मण जी को दिया गया । आमंत्रित नरेश भी यज्ञभूमि में आ उपस्थित हुए । लव और कुश नामक दो शिष्य बालकों को लिये हुए महर्षि वाल्मीकि भी यज्ञस्थान में पहुँचे और अपने रहने के लिये एक उपयुक्त स्थान ठीक किया । मुनिप्रवर के निर्देशानुसार दोनों बालकों ने यज्ञक्षेत्र में सुललित रामचरित्र को गाना आरम्भ किया । उन दोनों बालकों की आकृति से सब लोगों ने उन दोनों को सीता-गर्भ-सम्भूत श्रीरामचन्द्र जी के पुत्र समझा । स्थिरबुद्धि श्रीरामचन्द्र जी ने भी उनको पहचान लिया और महर्षि वाल्मीकि से अनुरोध किया कि वे सीता को बुला कर उनसे उनके सतीत्व की परीक्षा सबके सामने दिलावें । वाल्मीकि जी ने श्रीरामचन्द्र जी के इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकृत किया ।

दूसरे दिन यज्ञमण्डप में कौतूहलान्वित देवता, पूज्यपाद

वशिष्ठ, विश्वामित्र, दुर्वासा प्रभृति तेजःपुञ्ज महर्षिगण एवं असंख्य वानर, राक्षस और प्रजाजन, तथा राजागण श्रीरामचन्द्र सहित बैठे। थोड़ी देर बाद देवतुल्यप्रभावशाली वाल्मीकि, अवनतवदना, राम-रूप-ध्यानपरायणा जानकी को लिये हुए आये। उन्होंने सीता जी की पवित्रता की साक्षी दे कर और दोनों बालकों को उनके गर्भ से उत्पन्न बतलाया तदनन्तर मिथ्या लोकापवाद से परित्यक्ता वैदेही को श्रीरामचन्द्र द्वारा पुनः ग्रहण किये जाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। तब श्रीरामचन्द्र जी ने विशुद्ध चरित्रवाली जानकी से कहा कि सबको अपनी पवित्रता का विश्वास दिखाने के लिये पहिले की तरह कोई परीक्षा दें।

सीता का पाताल-प्रवेश

स्वामी के मुख से फिर से परीक्षा देने की बात सुन, पृथिवी की ओर दृष्टि गड़ाये हुए मैथिली ने अपने पातिव्रत्य का फल यह माँगा कि यदि वह सचमुच पतिव्रता हैं तो माता पृथिवी उनको अपनी गोद में उठा लें। सीता जी के मुख से यह वचन निकलते ही वहाँ की पृथिवी फटी और उससे एक अपूर्व सिंहासन पर बैठी भूदेवी निकली और रोती हुई पुत्री को अपनी गोद में बिठा--जहाँ की तहाँ समा गयी। फटी हुई भूमि फिर ज्यों की त्या हो गयी। यह अद्भुत कारड देख देवताओं ने प्रसन्न हो फूलों की वर्षा की, मुनियों ने प्रसन्न हो असंख्य साधुवाद दिये। विस्मित सभासदों ने सीता जी के असाधारण पातिव्रत्य की प्रशंसा की और लोकापवादभीत श्रीरामचंन्द्र जी

विलाप करने लगे। जब देवताओं ने जाना कि श्रीरामचन्द्र जी सीता का उद्धार करने के लिये पाताल पर आक्रमण करने वाले हैं, तब ब्रह्मा आदि देवताओं ने उन्हें समझा बुझा कर इस काम से विरत किया और वाल्मीकि रचित कथा को सुन कर मन बहलाने का अनुरोध किया।

अड़तीसवाँ अध्याय ।

माताओं का स्वर्गवास ।

ब्रह्मा जी के उपाय से, अर्थात् लव कुश द्वारा वाल्मीकि विरचित रामचरित्र को लव कुश के मुख से सुन, तथा यथारीति अश्वमेध यज्ञ पूरा कर, सीताविरहकातर श्रीरामचन्द्र जी अयोध्या को लौट गये । श्रीरामचन्द्र जी ने दूसरा विवाह न किया, किन्तु जानकी जी की काञ्चनमयी प्रतिमूर्त्ति के साथ दस हज़ार वर्ष तक अनेक यज्ञ यागादि तथा राज्य का शासन कर समय बिताया। पीछे कौशल्या, कैकयी और सुमित्रा का परलोक वास हुआ। श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी तीनों माताओं का यथा विधि और्ध्वदेहिक कृत्य किया और उनके उद्धारार्थ याचकों को धन रत्नादि दे सन्तुष्ट किया ।

गन्धर्वदेश को जीत कर भरत जी के दोनों पुत्रों को वहाँ का राज्य सौंपना।

इसी समय युधाजित् के परामर्श और सहायता से श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञानुसार महाबाहु भरत ने सिन्धु नदी के तट के पास वाले देश को जीत कर उसको दो भागों में बाँटा और उन दोनों के नाम तक्षशिला और पुष्कलावत रखा । पीछे से अपने दोनों पुत्रों को, जिनके

नाम तक्ष और पुष्कल थे, वहाँ के राजसिंहासनों पर बिठा-बे स्वयं अयोध्या लौट आये।

इसके बाद श्रीरामचन्द्र जी ने भरत के परामर्श से प्रसिद्ध कारुपथ देश में अंगदी नाम की पुरी और मनोहर चन्द्रकान्त देश में चन्द्रकान्ता नाम्नी निरुपमा नगरी स्थापित करवायी। लक्ष्मण जी के दो पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु थे। इन दोनों को उक्त दोनों पुरियों का अधिपति बनाया भरत और लक्ष्मण, अपने अपने पुत्रों को नवीन स्थापित राज्यों का शासन भार सौंप और अपने सामने कितने ही दिनों तक उन देशों का निरुपद्रव शासन करा अपने बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी के पास लौट आये।

नये स्थापित राज्यों में लक्ष्मण जी के पुत्रों का अभिषेक।

इस प्रकार सब भतीजों को अलग अलग राज्यों के स्वामी बना और उनके राज्यों की रक्षा का सुदृढ़ प्रबन्ध कर, सीता के वियोग में विकल श्रीरामचन्द्र जी कुछ कुछ मन को स्थिर कर समय बिताने लगे। कुछ दिनों बाद स्वयं काल किसी तपस्वी का दूत बन श्रीरामचन्द्र जी से मिलने आया और श्रीरामचन्द्र जी से एकान्त में बात चीत करनी चाही। जब श्रीरामचन्द्र जी एकान्त में बात चीत करने को राज़ी हुए, तब उसने श्रीराम जी से प्रतिज्ञा करायी कि बात चीत करते समय जो भीतर आवे अथवा, जो हम लोगों की बात चीत सुन ले, उसे आपको प्राण-दण्ड देना होगा।

काल का आना और श्रीरामचन्द्र की कठिन प्रतिज्ञा।

कालपुरुष के साथ बात चीत ।

इस प्रकार कठिन प्रतिज्ञा कर और लक्ष्मण जी को पहरे पर बिठा, श्रीरामचन्द्र कालपुरुष से एकान्त में बात चीत करने लगे । कालपुरुष ने ब्रह्मा जी का सन्देसा कहते हुए कहा कि अब भूमि का भार उतर चुका । अब आप वैकुण्ठ को पधारिये । इसपर प्रसन्न श्रीरामचन्द्र जी ने शीघ्र ही वैकुण्ठयात्रा करने का वचन दिया ।

दुर्वासा का आना और क्रुद्ध होना ।

कालपुरुष और श्रीरामचन्द्र जी में अभी बात चीत हो ही रही थी कि इतने में भूखे दुर्वासा ऋषि द्वार पर आये और लक्ष्मण जी से बोले कि अभी हमारे आने की सूचना राम को दो । जब लक्ष्मण ने कुछ काल टहरने के लिये उनसे कहा—तब वे क्रोध में भर रघुकुल को शाप द्वारा नष्ट करने को उद्यत हो गये । ऐसी दशा उपस्थित होने पर लक्ष्मण जी ने विचारा कि यदि मैं दुर्वासा ऋषि का कहना करता हूँ तो अकेला मैं ही दण्डनीय समझा जाऊँगा किन्तु कहना न मानने से ऋषि के शाप से सारे वंश ही का उच्छेदन हो जायगा । यह विचार लक्ष्मण जी ने अन्दर जा दुर्वासा के पधारने की श्रीरामचन्द्र जी को सूचना दी ।

लक्ष्मण का त्याग ।

महर्षि के पधारने की सूचना पा कर श्रीरामचन्द्र जी ने कालपुरुष को तुरन्त विदा कर दिया । तदनन्तर दुर्वासा ऋषि के भोजनों का यथोचित प्रबन्ध कर उन्हें भोजन कराये । क्षुधानिवृत्ति के अनन्तर अनेक आशीर्वाद देते हुए दुर्वासा चले गये । उनके चले जाने पर सत्यप्रतिज्ञ

श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण के विषय में विचार करने लगे। अन्त में रामचन्द्र जी ने मंत्रियों के सामने सारा हाल कह उनसे सम्मति माँगी। वे सब मौन रहे। तब वशिष्ट जी ने कहा कि त्याग और वध एक ही है। अतः आप लक्ष्मण का त्याग कर दीजिये। लक्ष्मण को देस निकाले की आज्ञा दी गयी। लक्ष्मण चुप चाप उसे शिरोधार्य कर अपने घर भी न गये और आँखों में आँसू भर सभा से निकल सीधे सरयू के तट पर पहुँचे और उन्होंने वहाँ योग द्वारा शरीर त्याग दिया।

श्रीरामचन्द्र की लक्ष्मण के पीछे जाने की इच्छा।

उधर सीता का वियोग, इधर लक्ष्मण का वियोग—श्रीरामचन्द्र इन दो चोटों को न सह सके और उन्होंने मानवी लीला संवरण करने का विचार पक्का कर भरत को राज्य देना चाहा, पर जब भरत जी ने उन्हींके साथ जाने का आग्रह किया तब श्रीरामचन्द्र जी ने अपने पुत्रों में से कुश को कोशलराज्य में विन्ध्यगिरि के पास कुशावतीपुरी की और लव को उत्तरकोशल के श्रावस्ती नगर की राजगद्दियों पर बिठाया और शत्रुघ्न को बुलाने के लिये शीघ्रगामी दूत मथुरा भेजे। दूतों के मुख से अयोध्या का हाल सुन शत्रुघ्न ने तुरन्त अपने साम्राज्य के दो भाग कर अपने प्रथम पुत्र सुबाहुक को मथुरा का और शत्रुघाती को विदिशा का राज्य दे अयोध्या को प्रस्थानित हुए।

वैकुण्ठ यात्रा।

जब श्रीरामचन्द्र जी की वैकुण्ठयात्रा का हाल चारों

ओर फैला, तब अधिकांश अयोध्यावासी, वानर तथा राक्षस अयोध्या में आ कर उपस्थित हुए। तब श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, मैन्द और द्विविद को कलि के आविर्भाव तक मृत्युलोक में रहने की आज्ञा दी और अंगद को किष्किन्धा का राज्य दे, वे पुण्यतोया सरयू नदी के तट पर जा पहुँचे। उस समय देवता पुष्पों की वर्षा करने लगे। तब श्रीरामचन्द्र जी अपने दिव्य विमान में बैठ वैकुण्ठ को सिधारे और वहाँ लक्ष्मीरूपा सीता और शेषावतार लक्ष्मण से मिले । अपने साथियों को उन्होंने ब्रह्मलोक सदृश सन्तानक नामक लोक में पहुँचवा दिया रावणवध में सहायकारी सुग्रीवादि देवगण अपने अपने अंशों में जा मिले ।

इति ।